मूर्तिपूजा-मीमांसा

पं. बुद्धदेव मीरपुरी

प्रकाशक

आर्य साहित्य विभाग

आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब

द्वितीयावृत्ति - सं. १९९४

मूर्तिपूजा-मीमांसा

लेखक—
बुद्धदेव मीरपुरी

प्रकाशक
अधिष्ठाता आर्य साहित्य विभाग
आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब
दयानन्दाब्द ११२

द्वितीयावृत्ति २०००]   सं० १९९४

प्रकाशक—

केशोराम उपप्रधान
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब
अधिष्ठाता आर्य साहित्य विभाग

मुद्रक—

बाबू जगजीतसिंह पाल
बसन्त प्रिंटिंग प्रैस,
गणपत रोड, लाहौर।

ओ३म्

भूमिका

प्रभु भक्ति किसी वाह्य वस्तु के अधीन नहीं है। यह तो हृदय के भीतर की बात है और वेद भगवान से लेकर आधुनिक काल के मनुष्यकृत ग्रन्थों तक सब इस सत्य को प्रकट करते हैं कि परमात्मा की मूर्ति बना कर उसकी पूजा करना किसी प्रकार भी परमात्मा की प्राप्ति अथवा आत्म-दर्शन का साधन नहीं है। यह जो कुछ परमात्मा की पूजा के नाम पर प्रचलित हो गया है, यह वेद की शिक्षा के सवथा विरुद्ध है। एक दिन जब महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज कानपुर में थे तो श्री गंगासहाय जी ने स्वामी जी से पूछा कि प्रतिमा-पूजन में क्या दोष है? इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि वेदों की आज्ञा पर चलना धर्म है। वेदों में प्रतिमा-पूजन की आज्ञा नहीं है न ही इस का वेद में विधान है, इसलिये उनके पूजन में आज्ञाभंग करने का दोष है। पुराणों में जो मूर्तियों का पूजना लिखा है वह सब गप्प तथा असार है। जो यह कहते हैं कि अपनी भावना का फल होता है, उन का कथन भी सत्य नहीं है। तुम बैठे चक्रवर्ती राजा बनने की भावना करते रहो इतने से सार्वभौम राजा नहीं बन सकोगे, भावना भी सच्ची होनी चाहिये; और यह एक अटल सत्य है

कि मूर्ति पूजा के कारण आर्य हिन्दू जाति सन्मार्ग से भटक गई और नाना प्रकार के वहमों में फंस गई। स्वामी दयानन्द ने अपने तप द्वारा इस सत्य को देख लिया था और जाति तथा संसार के कल्याण के लिये उन्होंने भयंकर कष्ट सहन करते हुए भी और अन्त में अपने प्राणों की आहुति देकर भी एक ईश्वर की भक्ति का प्रचार और प्रतिमा-पूजन का विरोध किया; परन्तु इस संसार में अत्यन्त आश्चर्यजनक बातें होती हैं। प्रतिमा पूजकों ने यही सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया कि स्वामी जी महाराज प्रतिमा पूजन मानते थे। जो पुस्तक आप के हाथ में है इस में यह दिखलाया गया है कि स्वामी जी पर इस विषय में जो आक्षेप किये जाते हैं वे सर्वथा निराधार हैं। श्री पं० बुद्धदेव जी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के विख्यात उपदेशक हैं। आपने ही यह पुस्तक लिखी है। पहिले अध्याय में उन आक्षेपों का जो स्वामीजी के ग्रन्थों पर मूर्ति पूजा के विषय में किये जाते हैं भली प्रकार उत्तर दिया गया है।

दूसरा अध्याय पं० बुद्धदेव जी ने पुराणों के अर्पण किया है और सिद्ध किया है कि पुराणों के कितने ही श्लोक मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं। इसी प्रकार अवतारवाद का खण्डन भी पुराणों द्वारा किया गया है।

तीसरे अध्याय में उन युक्तियों का उत्तर दिया गया है जो कि मूर्तिपजक इस के पक्ष में देते हैं।

चौथे अध्याय में प्रभु वाणी वेद के पवित्र मन्त्रों मे सिद्ध किया गया है कि वेद में मूर्ति पूजा का निषेध है।

इस पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। पं० बुद्धदेव जी ने इसमें कुछ नये प्रमाण भी दिये हैं और नये आक्षेपों का युक्ति-युक्त उत्तर भी दिया है। इसको पढ़ कर हृदय पर यह प्रभाव पड़ता है कि मूर्ति पूजा के पक्ष में जितने भी प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं वे अज्ञानवश ही किये जाते हैं और जो युक्तियां दी जाती हैं वह युक्तियां नहीं अपितु भ्रम जाल में डालने वाली बातें हैं। मूर्ति पूजा पर जितना धन समय तथा शक्ति व्यय की जा रही है यह संसार को दुःखी कर रही है। भगवान् के दर्शन का, उसकी भक्ति का एक ही मार्ग है और वह है योग—

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

खुशहालचन्द
प्रधान—आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर।

समर्पणम्

जिनके हृदय में आर्यसमाज के सिद्धान्त तथा महर्षि दयानन्द के लिये अगाध श्रद्धा है, जो प्रभु के अनन्य भक्त हैं, प्रत्येक समय, प्रत्येक अवस्था में आर्यसमाज की उन्नति का ही चिन्तन करते हैं, जो सुख दु ख लाभालाभ सम्पूर्ण परिस्थितियों में प्रसन्नचित्त रहते हैं, जिनके मुखमण्डल को देखकर दुःखी से दुःखी मनुष्य का भी हृदय-कमल खिल जाता है उन श्रद्धेय ला० खुशहालचन्द जा खुर्सन्द की सेवा में यह छोटा-सा उपहार सादर समर्पित करता हू ।

भवदीयो—

बुद्धदेवः

विषय-सूची

ओ३म्

मूर्तिपूजा मीमांसा

प्रथम अध्याय

मूर्तिपूजा और आर्यसमाज

आर्यसामाजिक भाई इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि जब कभी पौराणिकों से शास्त्रार्थ होता वा आर्यसमाज के विरुद्ध पौराणिक पंडित भाषण देते हैं तो झट कह देते हैं कि आर्यसमाजियो ! अपने घर को टटोलो जिस मूर्तिपूजा का तुम खण्डन

करते हो वह तुम्हारी सत्यार्थप्रकाश आदि सब पुस्तकों में लिखी है फिर किस मुँह से खण्डन करते हो।

इन पृष्ठों में मैं उन सब प्रमाणों वा युक्तियों का उत्तर समुचित रूप से विना किसी पक्षपात के, जो पौराणिक पण्डित पेश करते हैं देना चाहता हूं, जिससे भली प्रकार जनता को पता लग जायगा कि—जो महर्षि दयानन्द इतना ज़बरदस्त मूर्तिपूजा का खण्डन करता था यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उसकी बनाई हुई पुस्तकों में मूर्तिपूजा का विधान हो, विशेष करके जो आक्षेप पं० कालूरामजी शास्त्री वा पं० अखिलानन्द जी ने अपनी पुस्तकों में किए हैं उनका अच्छी तरह से खण्डन किया जायगा।

मनसा परिक्रमा

प्रश्न १—स्वामी दयानन्द ने अपनी बनाई संध्या में मनसा परिक्रमा लिखी है। प्रथम तो ऊपर लिखा है कि—"अथ मनसा परिक्रमामन्त्राः।" इस हैडिङ्ग के बाद नीचे "**प्राचो दिगग्निरधिपतिः**" इत्यादि वेद के ६ मन्त्र परिक्रमा करने के लिखे हैं, जिन मन्त्रों से हमारे समाजी भाई नित्य-प्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं। मन से परिक्रमा करना तब ही हो सकता है जब कि ईश्वर की मूर्ति कायम करली जावे। मूर्ति कायम करके उसके चारों तरफ़ घूमना मूर्तिपूजा है क्योंकि बिना स्वरूप शरीर या मूर्ति के परिक्रमा हो ही नहीं सकती।

हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्ति नित्य बनानी पड़ती है यह बात दूसरी है कि—सनातनधर्मी चार अंगुल या दो बालिश्त की मूर्ति बनाते हैं और आर्यसमाजी सौ दो सौ मील लम्बी और पचास साठ मील चौड़ी बनाते हैं, परन्तु बिना मूर्ति के इनकी सन्ध्या हो ही नहीं सकती। जब यह प्रति दिन परमात्मा की मूर्ति बनाकर उस की परिक्रमा करते हैं तो क्या कोई विचारशील मनुष्य कह सकता है कि ये मूर्तिपूजा नहीं करते ?

उत्तर १—न्यायदर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है—

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम् । १।२।१२॥

जहां खास अर्थ न किया हो। साधारणतया जो बात कही हो वहां वक्ता के अभिप्राय (मतलब) को न लेकर उस से उलटा परिणाम निकालना वाक्छल यानि वाणी का छल होता है। जितने भी प्रमाण महर्षिकृत पुस्तकों में से पौराणिक मूर्तिपूजा की पुष्टि में पेश करते हैं उन सब में वाक्छल होता है। इस बात को हम स्थान २ पर दर्शायेंगे ताकि पाठकों को पता लग जावे किये किस ढंग से अपना कार्य सिद्ध करते हैं।

मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के विषय में ऋषि संस्कार विधि में लिखते हैं—नीचे लिखे मन्त्रों से "सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से

चारों ओर बाहिर भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय निःशंक उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना।"

उपर्युक्त लेख में कितनी साफ़ परमात्मा की सर्वव्यापकता वा पूर्णता दिखलाई है, कभी साकार मूर्ति वाला सर्वव्यापक हो सकता है? ऐसा साफ़ ऋषि का लेख होने पर भी उससे मूर्तिपूजन सिद्ध करना दुराग्रह नहीं तो और क्या है? यहां परिक्रमा के अर्थ परमात्मा के चारों तरफ़ चक्र लगाना नहीं है, किन्तु जो मनुष्य सन्ध्या करता है उसकी अपेक्षा (निस्बत) से चारों तरफ़ नीचे ऊपर भागना है। जब अघमर्षण मन्त्र में मन परमात्मा की महिमा को देखता है तो पाप की इच्छा से घबराकर चारों ओर भागता है किन्तु जिधर भी जाता है उधर भगवान को मौजूद, सर्वव्यापक पाता है, परिणाम स्वरूप थककर उसी ब्रह्म में स्थित हो जाता है। बस यह सिद्ध हो गया कि—परिक्रमा के अर्थ हमारे शरीर की अपेक्षा (निस्बत) से चारों तरफ़ नीचे ऊपर भागने के हैं, परमात्मा के चारों ओर घूमने के नहीं।

बलिवैश्वदेव और मूर्ति पूजा

प्रश्न २—पंच महायज्ञ विधि में बलिवैश्वदेव प्रकरण में स्वामी दयानन्द जी ने नीचे लिखे मन्त्र बोल २ कर ईश्वर के खाने के लिए बलि रखने की आज्ञा दी है। नीचे लिखे मन्त्रों से बलि रख कर ईश्वर को भोग लगाया जाता है—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः, सानुगाय यमाय नमः, सानुगाय वरुणाय नम इत्यादि ।

स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र, यम, वरुण सोम, मरुत, भद्रकाली यह सब नाम परमात्मा के मान कर लिखे हैं। यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि जब आर्यसमाज़ी ईश्वर को भोग लगावें तब तो ईश्वर गट्ट गट्ट खा जावे और स्वामी दयानन्द भोग लगाने वालों को धार्मिक कहें किन्तु जब सनातन धर्मी ईश्वर को भोग लगावें तब ईश्वर निराकार हो जावे। ईश्वर को ही नहीं बल्कि "वनस्पतिभ्यो नमः" इस से समाजी वृक्षों को भी दाल भात रोटी खिलाते हैं। तब भोग लगाना बेशक मूर्तिपूजा है और आर्य समाजी मूर्ति पूजा करते हैं।

उत्तर २—इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो। नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणी-रिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ऋ० २०।१५।४॥

हे अत्यन्त स्तोतव्य प्रभूतैश्वर्य सम्पन्न विघ्नविनाशक परमात्मन् जो हम तेरा आरम्भ करके अर्थात् प्रत्येक सत्कर्म में तेरा ध्यान करके व्यवहार करते हैं, वे हम तेरे ही हैं तुझ से भिन्न कोई और उपासक की पुकार को नहीं सुनता। पृथिवी की भान्ति हमारी प्रार्थना स्वीकार कर।

इस मन्त्र में भगवान ने इस बात का उपदेश दिया है कि—

प्रत्येक कार्य के आरंभ में परमात्मा का नाम अवश्य लेना चाहिये। बलिवैश्वदेव यज्ञ में जो परमात्मा के इन्द्र, वरुण आदि नाम लेकर बलिएं रक्खी जाती हैं वह परमात्मा को भोग नहीं लगाया जाता किन्तु इस वेदमंत्र के अनुसार कर्म से प्रथम भगवान का नाम स्मरण करके कीड़े मकोड़े पशु पक्षी आदि को अन्न दिया जाता है। बाकी रही वृक्षों को भोग लगाने की बात यह आपके समझ की भूल है। जैसे कोई मनुष्य दान देते समय कहता है, १०) धर्मशाला के लिए वा १०) मन्दिर के लिए। इसका अर्थ यह नहीं के धर्मशाला वा मन्दिर की ईटों के लिए दान है बल्कि इसका अर्थ है कि मन्दिर वा धर्मशाला में रहने वालों के लिए यह दान है। इसी प्रकार वनस्पतियों के लिए अन्न देने के अर्थ हैं वृक्षों पर रहने वाले पक्षियों के लिए अन्न देना चाहिए। आज कल भी आर्य वा आर्य देवियें गर्मियों में वृक्षों के नीचे पानी के बर्तन लटकाते हैं और कबूतर आदि जानवरों को अन्न डालते हैं यही बलिवैश्वदेव का बिगड़ा हुआ रूप है इस में मूर्तिपूजा की गंध भी नहीं है।

सोम पान

प्रश्न ३—स्वामी दयानंद ने

वायावायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृता। तेषां पाहिश्रुधिहवम् ॥

इस मन्त्र से आर्याभिविनय पुस्तक में ईश्वर को भोग लगाया

है। आप इस मंत्र के अर्थ में लिखते हैं कि—हे जगदीश्वर आप आओ यह सोमादि समस्त रस आपके लिए बहुत उत्तम रीति से तैयार किया है, सर्वात्मा से आप इस का पान करो। जब आर्याभिविनय में ईश्वर सोम रस के कटोरे भर-भर पीता है तो हमारा भोग क्यों नहीं खाता ? आर्य समाज की यह नई फ़िलासफी हमारी समझ में नहीं आती।

उत्तर ३—ऋग्० १।३।१।१। मन्त्र का अर्थ महर्षि करते हैं—"हे अनन्त बल परेश वायो! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त होओ, हम लोगों ने अपनी अल्प शक्ति से ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है, और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं, वे सब आपके लिए अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं, और वे सब आपके समर्पण किये गये हैं, उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) इस मंत्र के अर्थ में पान शब्द के अर्थ रक्षा हैं न कि पीना। वक्ता के अभिप्राय से उलटा अर्थ करना विद्वानों का काम नहीं है। देखिये ऋग्वेद भाष्य में महर्षि कृत इसी मन्त्र का अर्थ "जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचे हुए पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं वैसे ही ईश्वर का रचा हुआ भौतिक वायु है उसकी धारणा से भी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा है" कहिये अब भी आप की समझ में आया या नहीं कि—पाहि वा पान का अर्थ रक्षा वा पालन है। दूसरी बात यह है कि—यहां सर्वात्मा से पान है कि मुँह से, इससे भी

पान का अर्थ रक्षा है, और आप तो पान से भी मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं कर सकते। तुलसीदास जी ने लिखा है—

बिन पग चले सुने बिन काना,
कर बिन कर्म करे विध नाना।
रसना बिना सकल रस भोगी,
बिन वाणी वक्ता बड़ जोगी॥

इससे पान करते हुए भी परमात्मा की आंख नाक कान वाली मूर्ति सिद्ध नहीं होती किन्तु तुलसीदास के कथनानुकूल बिना ही इन्द्रियों के परमात्मा सब काम करता है। कहिये अब आपकी समझ में आया या नहीं कि परमात्मा बिना मुँह के कटोरे भर २ कर कैसे पीता है।*

पटेले (सुहागे) की पूजा

प्रश्न ४—स्वामी दयानन्द जी अपने बनाए यजुर्वेद भाष्य में पटेले (सुहागे) का पूजन लिखते हैं। अपने खेत में चलने वाले लकड़ी के पटेले पर घी दूध शक्कर शहद चढ़ाना लिखा है। मन्त्र और स्वामी का अर्थ नीचे देखिये—

घृतेन सीता मधुना समज्यतां

---

* यदि पान का अर्थ पीना भी मान लिया जाय, तब भी ऋषि

विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना
अस्मान् सीते पयसाभ्यावव्र्त्स्व ॥

अर्थ—सब अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान मनुष्यों की आज्ञा से प्राप्त हुआ जल वा दुग्ध से पराक्रम सम्बन्धी सींचा वा सेवन किया हुआ पटेला घी तथा शहद वा शक्कर आदि से संयुक्त करो। पटेला हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा। इस हेतु से जल से वार २ वर्ताओ।

वेद का मन्त्र और स्वामी दयानन्द जी का अर्थ पाठक देख चुके. अब पाठक विचार लें कि—खेत के पटेला पर दूध, घी, शक्कर चढ़ाना क्या पूजन नहीं ? और फिर पटेला से घी, दूध,

---

के इन शब्दों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती—पौराणिकों के ठाकुर जी को भोग लगाने में तो ठाकुर जी के मुँह आदि अंग होते है यहां महर्षि स्पष्ट लिख रहे हैं—"सर्वात्मा से पान करो।" महर्षि इन शब्दों के में स्पष्ट ही परमात्मा को निराकार और सर्वव्यापक बता रहे हैं, तो फिर परमात्मा का मुँह और मूर्त्ति की कल्पना कैसे ? अतः मूर्त्तिपूजा के साथ तो इन शब्दों का दूर का भी सम्बन्ध नहीं, इस मन्त्र के सारे अर्थ आर्याभिविनय से पढ़ जाओ, प्रभु के साथ स्नेह का अतिशय द्योतित हो रहा है। प्रभु प्रेम की मस्ती है। सच्चे भगवद्भक्त के हृदय के सच्चे समर्पण के भाव है। —(सम्पादक)

की प्रार्थना करना जड़ पदार्थों से मांगना भी मूर्त्तिपूजा नहीं। समाजियों में यही तो अद्भुतता है कि अनेक जड़ पदार्थों को पूजते हुए भी मूर्त्तिपूजा से घबराते हैं। विचित्र लीला है।

उत्तर ४ — यजुर्वेद के बारहवें अध्याय में ६७ मन्त्र से लेकर ७१ मन्त्र तक कृषि विद्या का भली प्रकार वर्णन किया है। बोने के साधन कैसे हों, खाद कैसी डालनी चाहिए, बीज कैसा हो इत्यादि बातों का वर्णन खोल कर किया है। ऋषिकृत मन्त्र भाष्य में से कुछ अर्थ देता हूं।

इन खेतों में विष्ठा आदि मलिन पदार्थ नहीं डालने चाहियें, किन्तु बीज सुगन्ध आदि से युक्त करके ही बोवें कि—जिस से अन्न भी रोग रहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावें। य० अ० १० मं० ६९ ॥

सब विद्वानों को चाहिये कि—किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कार युक्त करें। य० १२। ७० ॥

कैसा अच्छा वेद का उपदेश है कि—भूमि में अच्छी खाद डाल कर उसको उत्तम करना, बीज को भी अच्छी तरह देख कर वा श्रेष्ठ बना कर बोना चाहिये। जिस आम को सौंफ के अर्क में भिगोकर बोया जाता है, उसका नाम सौंफिया और

उसमें से सौंफ की सुगन्धि आती है। इसी प्रकार अगर शहद आदि में भिगोकर बोया जावे तो अवश्य उसका प्रभाव होता है। इस विद्या की बात को न समझ कर पौराणिक पण्डितों को यहां पर भी मूर्तिपूजा ही दीखती है। दीखे क्यों नहीं, कृषिविद्या से उनका क्या बने, मूर्तिपूजा से तो उनका पेट भरता है। कहो बुद्धि में आया या नहीं। यहां पटेले की पूजा नहीं किन्तु बीजों को मधु आदि में सींच कर बोना लिखा है।

ऊखल मूसल

प्रश्न ५—संस्कार विधि नामक पुस्तक में जातकर्म संस्कार में स्वामी दयानन्द ने ओखली मूसल को भोग लगवाया है। ओखली और मूसल दोनों को भोग लगाकर भी मूर्ति पूजन का खण्डन, यह उन्हीं से हो सकता है, जो भेड़चाल से स्वामी दयानन्द की माया में पूरे फँस गए हैं। यदि इस मामले को पंचायत में दे दिया जावे कि—ओखली मूसल की पूजा करने वाला दयानन्दी समुदाय मूर्ति पूजक है या नहीं, तो ऐसी कोई वजह नहीं दीखती जिस वजह से आर्यसमाज पर मूर्ति पूजक होने की डिगरी न मिले।

उत्तर ५—मैं तमाम पौराणिक पण्डितों को चैलेंज देता हूँ कि—अगर तुम में हिम्मत है, तो तुम संस्कार विधि में इतना शब्द दिखा दो कि—ओखली वा मूसल की पूजा करनी

चाहिये। क्यों झूठ पर कमर बांध ली है? जिस मन्त्र को पौराणिक पेश करते हैं, वह यह है—

ओं शंडामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः।
मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥

इन दोनों मन्त्रों में कई कीड़ों के नाम वा उनको मारने का उपदेश है, ताकि प्रसूता को वा उसके बच्चे को कोई हानि न पहुँचा सके, और ये उलूखलादि सब कीड़ों के नाम हैं। कहिये क्या आप भी मूर्ति पूजा के अर्थ मूर्तियों को मारना करते है? अगर नहीं करते तो क्यों कहते हैं कि यहां ओखली की पूजा है यहां तो उलूखल को मारना लिखा है। हां आपके भविष्य पुराण में अवश्य लिखा है—

राजंतं मूसलं चैव हलं पार्श्वेषु विन्यसेत्।

सुन्दर मूसल की पूजा करनी चाहिये। कहिये अब डिगरी पौराणिक सभा पर होगी वा आर्यसमाज पर? कहो तो यह मामला पंचायत में दे देवें।

कुश, दर्भ और मूर्तिपूजा

प्रश्न ९—संस्कार विधि में मुण्डन संस्कार में कुश दर्भ की पूजा लिखी है। क्या घास पूजने वाले मूर्ति पूजक नहीं? पूजना ही नहीं किन्तु उस से प्रार्थना भी करते हैं—

ओषधे त्रायस्वैनꣳ मैनꣳ हिꣳसीः।

अर्थ—हे ओषधि कुश ! इस बालक की रक्षा कर, इसको मत मार । लीजिये कुश से बालक के बचाने की प्रार्थना करना क्या मूर्तिपूजा नहीं है ? अवश्य है किन्तु पक्षपात में उलझे हुए आर्यसमाजियों को ये बातें नहीं सूझतीं ।

उत्तर ६—व्याकरण का एक नियम है कि वचन, विभक्ति, पुरुष, काल आदि सब बातों में व्यत्यय (तबदीली) होता है । इसी नियम के अनुसार इस मन्त्र के दो अर्थ होते हैं । जब परमात्मा के पक्ष में लगाते हैं तब मध्यम पुरुष का एक वचन होता है, और ओषधी का अर्थ है परमात्मा—हे ओषधे सर्व रोग नाशक परमात्मन् ! इस बालक की आप रक्षा कीजिये । और जब इस मन्त्र का अर्थ ओषधी परक होता है तब व्याकरण के नियम से प्रथम पुरुष का एक वचन होता है, और अर्थ होता है यह ओषधी अपने गुणों से इस बालक के अनेक रोगों को दूर करती है । भला बतलाइए पाठकगण ! इस मन्त्र में कहां मूर्तिपूजा है किन्तु पौराणिक पण्डितों को तो हर बात में मूर्तिपूजा ही सूझती है ।

उस्तरा और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न ७—संस्कार विधि में मुण्डन संस्कार में छुरे को विष्णु की डाढ़ बताना, उससे प्रार्थना करना, नमस्ते करना, आदि बहुत सी बातें लिखी हैं । अगर नाई का छुरा विष्णु की

डाढ़ है तो वह निराकार कैसे रहा, जब निराकार नहीं तो उसकी मूर्ति भी है और जब मूर्ति है तो उसकी पूजा भी करनी चाहिये। अगर आर्यसमाजी जड़ पूजक नहीं तो जड़ को नमस्ते, नमस्कार आदि क्यों करते हैं। जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले। जो लोग इतना शोर मचाते थे कि जड की पूजा नहीं करनी चाहिये वे सच्चाई के आगे झुक गए और जड़ छुरे को नमस्कार आदि करके मूर्तिपूजक नहीं तो उस्तरा पूजक तो बन ही गए।

उत्तर ७--जो मन्त्र पौराणिक छुरे की पूजा सिद्ध करने के लिए देते हैं वह यह है—

शिवो नामासि स्वधितिस्तेपिता
नमस्तेऽस्तु मा मा हि ँ सीः।
निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय
रायस्पोषाय सु प्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥य० ३।६३॥

अर्थ—हे जगदीश्वर आप अविनाशी वज्रमय हैं आपका सुखस्वरूप विज्ञान देने वाला नाम है। आप मेरे पालन करने वाले पिता हैं। आपको हमारा सत्कार पूर्वक नमस्कार हो। आप मुझको अल्पमृत्यु से युक्त न कीजिये। आयु, अन्न, प्रजनन अच्छी प्रजा, धन की रक्षा, बल, पराक्रम आदि सम्पूर्ण पदार्थ आप की ही भक्ति से मिल सकते हैं, इसलिए आस्तिक होकर मैं आपकी भक्ति करता हूं।

मैंने वेदमंत्र का प्रमाण देकर साबित कर दिया है कि प्रत्येक कार्य भगवान् की प्रार्थना करके करना चाहिये। मुण्डन में भी ईश्वर की प्रार्थना के पश्चात् ही पिता अपने पुत्र के बालों को काटता है। यह उसकी आस्तिकता है। इस मन्त्र में स्वधिति आदि सम्पूर्ण नाम परमात्मा के हैं और परमात्मा ही से प्रार्थना वा उसी को नमस्ते यानी नमस्कार किया गया है, किसी जड़ छुरे उस्तरे को नहीं। महर्षि दयानन्दजी ने भी इस मन्त्र को ईश्वर वा विद्वान् परक ही लगाया है उस्तरा अर्थ नहीं किया। यह पौराणिक पण्डितों का छल है जो इस मन्त्र से छुरे की पूजा सिद्ध करते हैं। हां भविष्य पुराण में अवश्य लिखा है—**क्षुरिके रक्ष मां नित्यम्**—हे छुरे तू मेरी रक्षा कर। इस पर कई पौराणिक कह देते हैं कि हम तो छुरे की पूजा इस लिए करते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का स्वरूप है। इन पण्डितों का भी विचित्र मस्तिष्क है। कभी यह साबित करते हैं कि हम जड़ मूर्ति की पूजा नहीं करते, किन्तु उस में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। और कभी कहते हैं कि छुरे की पूजा इसलिये करते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का स्वरूप है। यह वदतोव्याघात है, इसलिये मानने के लायक नहीं। अगर सारा संसार परमात्मा है तो फिर आप भी परमात्मा हुए। जब ब्रह्म है तो पूजा किस की कौन करेगा ?

"**विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि**"—इसका अर्थ यह नहीं कि छुरा परमात्मा की डाढ़ है किन्तु "**यज्ञो वै विष्णुः**" इस श्रुति के अनुसार विष्णु नाम यज्ञ का है और उस्तरा उसका साधन यानी हथियार है। इस पर कई पण्डित कहते हैं कि इस श्रुति का अर्थ यह नहीं कि यज्ञ का नाम विष्णु है, किन्तु यज्ञ विष्णु अर्थात् परमात्मा का नाम है, जब यह सिद्ध हो गया कि यज्ञ नाम परमात्मा का है तो छुरा ईश्वर की डाढ़ ही रहा। यहां इनका यह अर्थ शतपथ की शैली के विरुद्ध है क्योंकि "**राष्ट्रं वै अश्वमेधः, ज्योतिर्वै पुरिषं**" इत्यादि सम्पूर्ण वाक्य हमारे ही अर्थ को पुष्ट करते हैं। दूसरी बात यह कि अगर विष्णु का नाम यज्ञ है, तो इस में हमारी कोई हानि नहीं विष्णु का अर्थ यज्ञ, विष्णु यज्ञ को इसलिये करते हैं कि इस में डाले हुए सब पदार्थ जल वायु में व्याप्त हो जाते हैं इसलिये यहां उस्तरा यज्ञ का साधन है। यही अर्थ उपयुक्त है। "**स्वधिते मैन ५ हि ५ सोः ॥**" इस श्रुति का भी अर्थ परमात्म परक है। हे स्वधिते अविनाशी अखण्डनीय परमात्मन्! आप इस बालक की आयु को लम्बा कीजिये। इसमें उस्तरे से नहीं किन्तु परमात्मा से ही प्रार्थना है।

रीढ़ की हड्डी और मूर्तिपूजा

प्रश्न ८—स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के सातवें समु-

ह्लास में लिखा है कि हृदय, नाभि, रीढ़ की हड्डी नासिकाग्र-भाग वा किसी अन्य स्थान का ध्यान करना चाहिये। हम इन आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं है? आप तो मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते थे और यहां तो स्वामी जी ने हड्डी की पूजा लिखी है। हड्डी पूजक बुरे होते हैं या मूर्त्तिपूजक?

उत्तर ८—इस विषय में जो महर्षि दयानन्द का लेख है वह नीचे दिया जाता है जिससे पाठकों को पता लग जावे कि क्या यह हड्डी की पूजा है या परमात्मा की। स्वामी जी लिखते हैं—"जब उपासना करना चाहें तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन, परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवें।" मन एक देशी है सर्व देशी नहीं उसने शरीर के किसी एक हिस्से में रहना है, सब में नहीं। इस लिये न्याय में लिखा है कि मन एक समय में एक काम करता है अनेक नहीं। अतः शरीर के किसी न किसी एक ही प्रदेश में ठहरता है लेकिन प्रश्न तो यह है कि क्या यह हृदय आदि की पूजा है? कभी नहीं जैसे वेद में लिखा है कि—

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां।

धिया विप्रोऽजायत ॥

पर्वतों की गुफाओं में वा नदियों के सङ्गम में किसी एक स्थान पर बैठकर भगवान् की उपासना करनी चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि यह स्थान की पूजा है। आसन पर बैठ कर सन्ध्या करने से आसन की पूजा नहीं होती। इसी प्रकार से मन चाहे नाभि आदि किसी प्रदेश में रहे स्वामीजी लिखते हैं कि मनुष्य को चाहिये अपने आत्मा से परमात्मा में लीन हो जावे। यहां आत्मा परमात्मा का चिन्तन है नकि हड्डी वा हृदय का।

जो लोग यह उपहास करते हैं कि आर्य समाजी हड्डी पूजक हैं उनको कुछ बुद्धि से कार्य लेना चाहिये। क्या इस हिसाब से पौराणिक विष्णु पूजक, सर्पपूजक, पत्थरपूजक, वृक्षपूजक आदि नामों वाले नहीं होंगे? कौनसी ऐसी वस्तु है जिसकी पूजा पुराणों में लिखी हो।

कुरानी और पौराणिक मूर्तिपूजा

प्रश्न ९ — सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का खण्डन करते हुए स्वामीजी लिखते हैं कि "ऐ मुसलमानो! तुम जो हिन्दुओं को बुतपरस्त कहते हो, क्या तुम मस्जिदुल्-हरम की पूजा नहीं करते हो? आप हिन्दुओं से भी बड़ी मूर्ति की पूजा करते हैं। अगर आप कहें कि हम तो मक्के की तरफ़ मुँह करके परमात्मा की पूजा करते हैं, तो हिन्दू भी तो यही

कहते हैं कि हम मूर्ति के आगे परमात्मा की पूजा करते हैं।" इस स्वामीजी के लेख से मूर्तिपूजा ही सिद्ध नहीं होती किन्तु युक्ति देकर स्वामी मूर्तिपूजा को सिद्ध करते हैं। इस लेख की मौजूदगी में आर्यसमाजी कैसे कह सकते हैं कि हम मूर्तिपूजक नहीं ?

उत्तर ९--जो लेख स्वामी जी ने लिखा है उस को यहां पर लिखना आवश्यक है मैंने कई शास्त्रार्थों में देखा है कि पौराणिक सम्पूर्ण लेख नहीं पढ़ते किन्तु भ्रम में डालने के लिये बीच २ में पढ़ कर सुना देते हैं। लेख यह है—

"*समीक्षक*—क्या यह छोटी बुत्परस्ती है ? नहीं बड़ी। (पूर्वपक्षी) हर मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं हैं, किन्तु बुतशिकन अर्थात् मूर्तों के तोड़ने हारे हैं। हम किबले को ख़ुदा नहीं समझते। (उत्तरपक्षी) जिनको तुम बुत्परस्त समझते हो वे भी उन उन मूर्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों के तोड़ने हारे हो तो उस बड़े बुत् किबले को क्यों नहीं तोड़ते ?

(प्र०) वाहजी हमारे तो किबले की ओर मुँह करने का कुरान में हुक्म है और इन के वेद में नहीं (उ०) जैसे तुम्हारे लिए कुरान में हुक्म है वैसे इन के लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम कुरान को ख़ुदा का हुक्म समझते हो वैसे ही पुराणी पुराणों को ख़ुदा के अवतार व्यास जी का वचन समझते

हैं। तुम और इन में बुत्परस्ती का कुछ भिन्न भाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बुत्परस्त और ये छोटे हैं क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तब तक उसके घर में ऊँट प्रविष्ट हो जावे वैसे ही मुहम्मद साहिब ने छोटे बुत् को मुसलमानों में से निकाला परन्तु बड़े बुत् जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है वह मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करा दी ? क्या यह छोटी बुतपरस्ती है ? हां जैसे हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ, तो बुतपरस्ती आदि बुराइयों से बच सको अन्यथा नहीं। तुम जब तक अपनी बड़ी बुत्परस्ती को न निकाल दो तब तक दूसरी छोटी बुत्परस्ती के खण्डन से लज्जित हो निवृत्त रहना चाहिये और अपने आप को बुत्परस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये।

पाठक अगर आप ध्यान से महर्षि का लेख पढ़ेंगे तो आपको भली प्रकार विदित हो जाएगा कि ऋषि ने इस लेख में मूर्तिपूजा का खण्डन किया है या मण्डन। महर्षि तो मुसलमानों को सच कहते हैं कि हम जैसे वैदिक बन कर ही मूर्तिपूजा आदि बुराइयों से बचोगे अन्यथा नहीं। जब स्वामी जी मूर्तिपूजा को बुरा बतलाते हैं तो इस लेख में मूर्तिपूजा बतलाना क्या अत्यन्त अनुचित नहीं ? और अन्त में उन्होंने लिखा है कि मूर्तिपूजा छोड़ कर पवित्र हो जाओ। इस लेख का अभिप्राय इतना ही है कि मूर्तिपूजक को

मूर्तिपूजा के खण्डन का अधिकार नहीं, जब तक कि वह स्वयं मूर्तिपूजा न छोड़े, जैसे पौराणिक मूर्तिपूजक वैसे मुसलमान मूर्तिपूजक। इन दोनों को मूर्तिपूजा छोड़ कर ईश्वरपूजा वा वैदिक धर्म को मानना चाहिये।

प्रत्यक्ष ब्रह्म और मूर्तिपूजा

प्रश्न १०——सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ ही में स्वामीजी लिखते हैं—

"त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि" इत्यादि इसमें स्वामीजी ने ब्रह्म को प्रत्यक्ष लिखा है अगर वह मूर्तिवाला साकार नहीं है तो उस का प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? क्योंकि वह स्वामीजी के लेख के अनुसार प्रत्यक्ष है और प्रत्यक्ष मूर्ति वाला होता है, इसलिये मूर्तिपूजा सिद्ध है।

उत्तर १०——ऋग्वेद में यह लिखा है कि ब्रह्म का प्रत्यक्ष कैसे वा किस चीज़ से किया जाता है। मन्त्र—

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश
स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
त पाकेन मनसापश्यमतितस्तं रेर्लेह
स उ रेलिह मातरम् ॥ऋ० १०।११४।४॥

अर्थ—वह परमात्मा एक है, वही सम्पूर्ण संसार में व्यापक है।

मैं उस ब्रह्म को परिपक्क मन वा आत्मा से देखता हूँ।

प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है एक बाह्य इन्द्रिय जन्य, दूसरा आभ्यन्तर अर्थात् जो मन वा आत्मा से किया जाता है उसी को मानसिक वा आत्मिक प्रत्यक्ष कहते हैं जैसे लिखा है "दृश्यते त्वग्रया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" उस प्रभु के दर्शन सूक्ष्म बुद्धि से होते हैं इस लिये परमात्मा को प्रत्यक्ष कहने से उसकी मूर्ति सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उसका आत्मा से प्रत्यक्ष किया जाता है, और आत्मा परमात्मा दोनों निराकार हैं।

डंडा, जूता और मूर्तिपूजा

प्रश्न ११—संस्कार विधि के समावर्तनसंस्कार में स्वामी जी ने डण्डे वा जूते की पूजा लिखी है। अब तो आप को पता लगा या नहीं ? आप तो मूर्ति पूजा का खण्डन करते थे, किन्तु यहां डण्डे वा जूते की पूजा निकल आई। चौबे जी गए छब्बे जी बनने रह गए दुबे जी। अच्छी हुई।

उत्तर ११—इस शङ्का पर तो पौराणिक पण्डित अपनी बुद्धि का दिवाला ही निकाल देते हैं। मैं तो इन पण्डितों को कहता हूँ कि जिन चीजों की पूजा तुम संस्कार विधि आदि पुस्तकों में बतलाते हो वहां पर हमको इतना ही बतला दो कि इन चीजों में से किसी के लिए यह लिखा हो कि इस

चीज़ की पूजा करनी चाहिये। अगर नहीं दिखला सकते तो यह आप का कथन असत्य है कि संस्कार विधि में डण्डे आदि की पूजा लिखी है। जूते वा डण्डे की पूजा की हक़ीकत नीचे लिखी जाती है। समावर्तन संस्कार में स्नातक जूता पहनते वक्त कहता है।

"**प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्।**" यह मज़बूत जूतियें आदि पैर की रक्षा के लिए पहनता हूँ।

"**ओं विश्वाभ्यो माष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः**" यह डण्डा प्रत्येक प्रकार से रक्षा करने वाला है इस मन्त्र से डण्डा हाथ में ग्रहण करता है। मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि ब्रह्मचारी जूता पैर में पहन कर चलता है? क्या यह जूते की पूजा है? क्या जिन चीज़ों की पूजा की जाती है उनकी यही दशा की जाती है? क्यों भ्रम में पड़े हो? यह तो रक्षा के लिये धारण किये जाते हैं, न कि पूजा के लिये। हां डण्डे से अवश्य पूजा लिखी है, पापियों को ठीक करने के लिये।

मूर्ति पूजक लोग ये ही शंकाएँ आर्यसमाज की पुस्तकों पर किया करते हैं, जिनका उत्तर हमने दे दिया। कई पौराणिक लोगों ने ऐसे ट्रैक्ट पंचमहायज्ञ विधि आदि पुस्तकों के नाम से छाप रखे हैं जिन से मूर्तिपूजा सिद्ध करने की कोशिश किया करते हैं। ऐसे अवसरों पर

उन से कहना चाहिये कि यह अजमेर की छपी पंचमहायज्ञविधि आदि पुस्तक है, अगर तुम में हिम्मत है तो जिस बात को तुम कहते हो वह इस पुस्तक में दिखलाओ, अगर नहीं दिखला सकते तो जो पुस्तक तुम ऋषि दयानन्द के नाम से पेश करते हो वह ऋषिकृत नहीं बल्कि तुम्हारी कपोल कल्पित है, हम इस को नहीं मानते। यह तुम्हारे लिये कोई नई बात नहीं, प्रथम भी व्यासादि ऋषियों के नाम से तुमने अनेक पुस्तकें बना रक्खी हैं।

दूसरा अध्याय

पुराण और मूर्तिपूजा

जिन पुराणों को पौराणिक लोग वेद से भी प्रथम मानते हैं और परमात्मा के अवतार व्यास जी का वचन कहते हैं अब मैं उन्हीं पुराणों में से बतलाऊँगा कि मूर्तिपूजा करना ठीक नहीं। कई पौराणिक पण्डित कह दिया करते हैं कि कि जब तुम समाजी पुराणों को नहीं मानते तो उनका प्रमाण क्यों देते हो। इन पण्डितों को इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं रहता कि ये लोग सत्यार्थ-प्रकाश आदि पुस्तकों को न मानते हुए भी अपनी पुस्तक, भाषण,

शास्त्रार्थ आदि में मूर्तिपूजा आदि अवैदिक सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिये ऋषि दयानन्द कृत पुस्तकों का प्रमाण क्यों उपस्थित कर देते हैं ? भाई ! शास्त्रार्थ का यह नियम है कि जिस सिद्धान्त को मनुष्य सिद्ध करना चाहे अगर उसी असूल को साबित करने के प्रमाण प्रतिवादी की पुस्तक से निकाल देवे तो वह सिद्धान्त सबसे अधिक मज़बूत हो जाता है। यदि आर्य-समाजी पुनर्जन्म का प्रमाण कुरान से वा मूर्तिपूजा के निषेध का प्रमाण पुराण से निकाल देवे तो इससे बढ़कर और क्या सबूत पुनर्जन्म के होने में वा मूर्तिपूजा के खण्डन के लिये हो सकता है ? कोई आदमी किसी मनुष्य से कहता है कि तुमने मेरे १०) देने हैं। प्रमाण के लिये उसी कर्ज़दार की बही में से रुपये देने का लेख पेश कर देवे तो कर्ज़ के देने में सब से बड़ा प्रमाण माना जावेगा।

आर्यसमाज परमात्मा को निराकार मानता है इस में कोई झगड़ा नहीं क्योंकि पौराणिक भी परमात्मा को निराकार मानते हैं, यह सिद्धान्त उभय पक्ष सम्मत है और निराकार की मूर्ति भी नहीं होती, यह भी दोनों पक्ष मानते हैं। इसलिये आर्यसमाज का सिद्धान्त तो सिद्ध है।

मूर्तिपूजा को सिद्ध करने के लिये दूसरा स्वरूप पौराणिक साकार मानते हैं। यह साध्य है क्योंकि आर्यसमाज इसको नहीं मानता। जितनी मूर्तियें मन्दिरों में पूजी जाती हैं, पौराणिक पंडितों का कहना है कि वे सब इसी साकार देहधारी परमात्मा की हैं।

जिन पौराणिक परमात्माओं की मूर्तियें मन्दिरों में पूजी जाती हैं, वे परमात्मा नहीं थे और उनके पूजने वालों को मुक्ति नहीं किन्तु दुःख मिलता है इस बात को सिद्ध करने के लिये पांच युक्तियें पेश की जाती हैं—

(१) जिन पौराणिक देवताओं की मूर्तियें मन्दिरों में पूजी जाती हैं वे किसी दूसरे की उपासना,भक्ति और नाम स्मरण करते हैं।

(२) जो गुण परमात्मा के निराकार, पूर्णकाम, सर्वज्ञ, सृष्टिकर्त्ता आदि बतलाये हैं वे इन पौराणिक ईश्वरों में नहीं घटते।

(३) इनकी पूजा करने वालों के लिये दुःख लिखा है, ईश्वर की भक्ति दुःख से छूटने के लिये की जाती है, न कि दुःख के लिये।

(४) जो आचार इन परमात्माओं का पुराणों में बतलाया है उससे तो यह सिद्ध होता है कि ये साधारण मनुष्य भी नहीं थे।

(५) इनके आपस में झगड़े वा एक दूसरे की निन्दा से यह सिद्ध होता है कि इनमें से कोई भी ईश्वर नहीं है।

इन सब युक्तियों के लिये नीचे पुराणों के प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। उनका अर्थ भी वही देता हूं जो पौराणिकों ने किया है।

ब्रह्मा आदि अन्य के उपासक हैं

पौराणिक परमात्माओं में से ब्रह्मा, विष्णु, महेश मुख्य परमात्मा हैं इनके लिये यदि सिद्ध हो जाये कि ये परमात्मा

नहीं हैं तो दूसरे देवों का अपने आप अनीश्वरत्व सिद्ध हो जायगा देवी भागवत के स्कं० ३ अ० ४ में तीनों देवता अपनी हालत का बयान करते हुए कहते हैं—

वयं तु युवतयो जाता सुरूपाश्चारुभूषणाः ।
विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत् सन्निधिं पुनः ॥७॥

अर्थ—हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु, शिव नवजवान स्त्रियें हो गये, हमारे भूषण वा वस्त्र स्त्रियों वाले थे। हमको यह दशा देखकर परम विस्मय (हैरानी) हुआ देवी के चरणों के समीप जाकर विष्णु कहने लगा—

विष्णु

अकर्ता—"**ज्ञातं मयाखिलमिदं त्वयि संनिविष्टं,**
त्वत्तोऽस्य संभवलयावपि मातरद्य ।
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा,
ज्ञाताधुना सकल लोकमयीति नूनम् ॥३०॥

अर्थ—हे जननि ! मैंने आज ही यह जाना कि इस संसार को बनाने वा प्रलय करने हारी आप ही हैं। आप ही के अन्दर इस ब्रह्माण्ड को बनाने की शक्ति है, अन्य में नहीं यह इस समय मैंने जाना है।

वेद कहता है "द्यावाभूमी जनयन् देव एकः" उसी एक परमात्मा ने प्रकाशमयलोक तथा पृथिवी आदि लोक बनाये, किन्तु यहां विष्णु कहता है कि मैं संसार का बनाने वाला नहीं।

अज्ञानी—नाहं भवो न च विरंची विवेद मातः,
कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यं।
कानीह संति भुवननि महाप्रभावे,
ह्यस्मिन भवानि चरिते रचनाकलापे ॥३५॥

अर्थ—हे मातः! मैं विष्णु, शिव, ब्रह्मा तेरे चरित्र को नहीं जानते। जब हम ही तेरे चरित्र को नहीं जानते तो दूसरा कौन जान सकता है। इस संसार में कौन २ से लोक हैं इस बात को हम नहीं जानते।

वेद कहता है कि परमात्मा सर्वज्ञ है किन्तु यहां विष्णु अपने को ही नहीं किन्तु शिव आदि सब को अज्ञानी बतलाता है इस से सिद्ध है कि ये परमात्मा नहीं।

अनेक—अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव,
दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु देवि भुवनेषु न संति किं ते,
किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम् ॥३६॥

अर्थ—हमने इस संसार लोक में ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी दूसरे

ही देखे हैं क्या दूसरे लोकों में शिवादि नहीं हैं, अवश्य हैं लेकिन हम इस तेरे विस्तृत प्रभाव को नहीं जानते। वेद में बतलाया है—

दिव्यो गंधर्वो भुवनस्य यस्पति-
रेक एव नमस्यो विच्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव,
नमस्ते ऽस्तु दिवि ते सधस्थम्। अ० २।१।१॥

सम्पूर्ण संसार का अधिष्ठाता परमात्मा है और वह एक ही है। वही नमस्कार करने और प्रशंसा करने योग्य है। वेद ज्ञान द्वारा उस को प्राप्त कर सकते हैं। वेद परमात्मा को एक कहता और विष्णु के कहने से परमात्मा अनेक सिद्ध होते हैं इस से सिद्ध है कि विष्णु परमात्मा नहीं है।

स्मरण—याचेत्र तेंघ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं,
चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत्।
नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव,
संदर्शनं तव पदांबुजयो सदैव ॥३७॥

अर्थ—मैं आप के चरणों में गिर कर आप से यही मांगता हूं कि हमेशा मेरे चित्त में यह आप का मनोहर रूप बसता रहे। मेरी मुख रूपी गुहा में आप का ही नाम रहे। मैं सदा आपके

चरणों का दर्शन करता रहूं।" इस श्लोक में विष्णु ने तीन बातें मांगी हैं—मन में देवी का रूप, ज़बान पर नाम वा चरणों का दर्शन। कहिये पाठक! इस प्रकार दूसरे की भक्ति करने वाला परमात्मा क्यों कर हो सकता है?

नौकर—भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं,
त्वं स्वामिनीति मनसा ननु चिन्तयामि।
एषावयोरविरता किल देवी भूयाद्,
व्याप्तिः सदैव जननि सुतयो रिवार्ये ॥३८॥

अर्थ—हे जननि! मैं आप का भृत्य दास हूं, निरंतर मुझ में ऐसी भावना कीजिये। मैं मन से यही चिन्तन करता हूँ कि आप मेरी स्वामिनी (मालिक) हैं। हे आर्ये! आप मुझको अपने बच्चे की तरह जानो।

परमात्मा किसी का गुलाम नहीं है, किन्तु सब परमात्मा के दास हैं यहां विष्णु अपने आप को दास बतलाता है इस लिये विष्णु परमात्मा नहीं।

पामर—त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपञ्चं।
सर्वज्ञता परिसमाप्ति नितांत भूमिः।
किं पामरेण जगदंब निवेदनोयं,
यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात् ॥३९॥

अर्थ—तू इस सम्पूर्ण संसार प्रपञ्च को जानती है। आप में सर्वज्ञता समाप्त हो जाती है। हे जगदंब! मैं पामर आप से क्या निवेदन कर सकता हूँ। जो ठीक हो वही आप कीजिये, जिस से आप का इच्छित सिद्ध हो।

यहां विष्णु अपने को पामर बतलाता है, जिस के अर्थ अत्यन्त नीच के हैं। अत्यन्त नीच परमात्मा कैसे हो सकता है। वेद कहता है—

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।
शुद्धै रुक्थैर्वा वृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्
ममत्तु॥ ऋ० ८।९५ ७॥

अर्थ—हम सब शुद्ध पवित्र ईश्वर की स्तुति पवित्र वेद मन्त्रों द्वारा करें वह पवित्र आश्रय दाता सब को सुख देता है। इस मन्त्र में स्पष्ट ईश्वर को शुद्ध पवित्र बतलाया है।

अनित्यः—ब्रह्माहमीश्वरवरः किल ते प्रभावात्,
सर्वे वयं जनियुतानयदा तु नित्याः।
केन्येऽसुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्याः,
नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणाः॥४२॥

अर्थ—मैं विष्णु, ब्रह्म, शिवजी आप की कृपा से उत्पत्ति वाले हैं। जो उत्पन्न होते हैं, वे नित्य कैसे हो सकते हैं? जब हम

नित्य नहीं तो दूसरे इन्द्रादि देवता कैसे नित्य हो सकते हैं ? इसलिये केवल आप ही नित्य रहने वाले वाली शक्ति हैं। कहिये पाठक ! अब विष्णु के अनीश्वर होने में कोई सन्देह रहा। वेद तो परमात्मा को नित्य अचर बतलाता है—

भाग्योभवदथो अन्नमदद्बहु ।

यो देवमुत्तरावतमुपासाते सनातनम् ॥

अ० १०।८।२२॥

अर्थ——जो आदमी अनेक गुण युक्त सनातन परमात्मा की उपासना करता है वह भाग्यशील है ईश्वर की कृपा से अनेक भोग्य पदार्थों को प्राप्त होता है। अन्त में विष्णु कहता है—

नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव ।

सदा ज्ञान प्रकाशं मे देहि सर्वार्थदं शिवे ॥४९॥

अर्थ——हे महाविद्ये आप को नमस्कार है, आप के चरणों को नमस्कार करता हूं। आप मुझको ज्ञान और प्रकाश दीजिये। जो दूसरे से ज्ञान प्रकाश मांगता है वह कभी भगवान नहीं हो सकता।

शिवजी

जब इतना कहकर विष्णु जी बैठ गये तो झट शिवजी खड़े हो गये और कहने लगे—

जननि देहि पदाम्बुजसेवनं

युवतिभावगतानपि नः सदा ।

पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजाद्
विरहिता क्व लभेम सुखं स्फुटम् ॥अ० ५।१३॥

अर्थ—हे जननि स्त्री बने हुए भी हमको अपने चरणों का सेवन दीजिये। अगर हम आदमी भी बन जावें तो भी आपके चरण कमल से रहित होकर सुखी नहीं हो सकते।

तपनिंदा—**तपसि ये मुनयो निरतामला-**
स्तव विहाय पदाम्बुजमेवनं।
जननि ते विधिना किल वञ्चिताः
परिभवो विभवे परिकल्पितः ॥१.८॥

अर्थ—जो ऋषि लोग आप के चरण कमल को छोड़कर तपश्चर्या में लगे रहते हैं। वे ठगे गए हैं, उन्होंने दुःख को ऐश्वर्य, निरादर को सत्कार समझा है, तप, इन्द्रियदमन, समाधि अनेक यज्ञ आदि किसी से भी मुक्ति नहीं होती। आप के चरण सेवन से ही मुक्ति हो सकती है।

ब्रह्मा

शिवजी के पश्चात् ब्रह्मा जी कहने लगे—

अद्याहं तव पादपंकजपरागादानगर्वेण वै,
धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणः जातः प्रसादाच्च ते।

याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं,
हित्वा मोहमयं महार्तिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु ॥२८॥

अर्थ—मैं आज आप के चरणकमल को देखकर आपकी कृपा से कृतकृत्य हो गया हूं। हे मुक्तिप्रदे! संसार दुःख को दूर करने वाली ! मेरी आपसे बार बार यही प्रार्थना है कि इस संसार के मोह जाल को छोड़ कर मैं आप ही की भक्ति में हमेशा लगा रहूं। इस प्रकार महामोह में फँसा हुआ दूसरे से मुक्ति मांगने वाला कभी ईश्वर नहीं हो सकता। जगदीश नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है।

मैं प्रभु नहीं हूं—**न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति**
प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम् ॥३०॥

जो मनुष्य मुझको प्रभु परमात्मा कहता है वह अज्ञानी तेरे चरित्र को नहीं जानता। यहां साफ़ ब्रह्मा जी अपने मुख से कहते हैं कि मैं परमात्मा नहीं हूं।

दास—**अतोऽहं च जातो विमुक्तः कथं स्यां**
सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद् वै-
तवाज्ञाकरः किंकरोऽस्मीतिनूनं
शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ ॥२९॥

अर्थ—इस संसार से मैं मुक्त कैसे होऊँ ? मैं आपका आज्ञाकारी

दास हूं। हेशिवे! इस संसार रूपी समुद्र में मोह में मग्न मेरी रक्षा कीजिये।

योगनिन्दा—श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः

प्रकुर्वन्ति मूढाः समाधौ स्थिता वै,

न जानंति ते नाम मोक्षप्रदं वा

समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण ॥३२॥

अर्थ—जो मूर्ख आदमी अष्टांगयोग, आसन, प्राणायाम, ध्यान धारणा, समाधि आदि में परिश्रम करते हैं, वे बहाने से उच्चारण करने से मुक्ति देने वाले तेरे नाम को नहीं जानते।

जिस योग वा योगियों की प्रशंसा, योग दर्शन वा योगीराज कृष्ण ने स्थान २ पर गीता में की है उसकी इतनी निंदा! हम पौराणिकों से पूछते हैं कि क्या १६ कला पूर्ण आपके कृष्ण अवतार की बात सच है या ब्रह्मा की जो योग की निंदा करते हैं।

प्रायः इन्हीं तीन देवताओं की पूजा पौराणिक मन्दिरों में होती है। ये स्वयं अपने आप को परमात्मा नहीं बताते, इस लिये इनकी मूर्तियों की पूजा ईश्वर पूजा नहीं हो सकती।

कृष्ण

पौराणिक लोग केवल श्री कृष्ण को ही पूर्ण अवतार मानते हैं बाकी सब को अंशावतार मानते हैं। अब ज़रा उन की

कथा भी सुनिये। देवी भागवत स्कं० ४ अ० २४ में लिखा है कि श्री कृष्ण के घर लड़का पैदा हुआ और उस कोकोई चुरा कर ले गया। जब महाराज को उस का कुछ पता नहीं लगा तो विलाप के साथ कहने लगे—

मातर्मयाति तपसा परितोषिता त्वं,
प्राग् जन्मनि प्रसुवनादिभिरर्चितासि।
धर्मात्मजेन बदरीवनखण्डमध्ये,
किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः ॥४८॥

अर्थ—हे मातः मैंने प्रथम जन्म में अत्यन्त उग्र तप किया था, और बदरीवन में फूल आदि से आप की पूजा करके आप को प्रसन्न किया था। हे जननि क्या आप मेरे उस भक्तिभाव को भूल गई हैं ? आप मेरी सुध क्यों नहीं लेतीं ?

सूतिगृहादपहृतः किमु बालको मे,
केनापि दुष्टमनसाप्यथ कौतुकाद्वा।
मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं,
लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता ॥४९॥

अर्थ—प्रसूतागार से कोई दुष्ट मेरे बालक को उठा कर ले गया है, इस में मेरी कितनी मानहानि है। हे मातः यह मेरी हानि नहीं है किन्तु सब से अधिक आप की हानि है। मैं आप का

भक्त हूँ और भक्त का सङ्कट दूर न किया तो आप को ही लज्जा आयगी ।

अज्ञानी—नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं,
को वेद मंदमतिरल्प विदेव देहि ।
क्वासौ गतो मम भटैर्न च वीक्षितो वा,
हर्तांबिके जवनिका तव कल्पितेयम् ॥५२॥

अर्थ—जननि मैं तेरे गुप्त चरित्र को नहीं जानता, जब मैं भी तेरे चरित्र को नहीं जानता तो दूसरा कौन जान सकता है। मेरे किसी भी योद्धा को बालक चुराने वाले का पता नहीं लगा, यह सब आप ही की लीला है।

मातास्य रोदिति भृशं कुररीव बाला,
दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव ।
कष्टं न वेत्सि ललिते प्रमितप्रभात्रे,
मातस्त्वमेव शरणं भव पीडितानाम् ॥५६॥

अर्थ—इस चुराये गए बालक की माता मेरे पास आकर रोज़ कुञ्ज की तरह विलाप करती है। क्या आप इस महा कष्ट को नहीं जानती हैं। जननि! संसार के दुखों से पीड़ित जनों का आप ही उद्धार करने हारी हैं। लीजिये पाठक! जिन कृष्ण जी को पौराणिक १६ कला पूर्ण अवतार मानते हैं, वे स्वयं

दुःखी वा अपने बालक का पता लगाने के लिये किसी दूसरे की स्तुति कर रहे हैं, फिर क्योंकर उन को परमात्मा मान सकते हैं। यहां तक ही नहीं बल्कि संतान के लिये शिवजी का तप किया और जब शिवजी ने दर्शन दिया तो लिखा है—

पपात पादयोस्तस्य दंडवत् प्रेम संयुतः।

अर्थ—कृष्णा प्रेम से युक्त होकर शिवजी के चरणों में गिर गये और प्रार्थना करने लगे—

लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो।
सोऽहं माया विमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो॥

अर्थ—हे देव मुझको प्रार्थना करते शर्म आती है, मैं माया से मूर्ख होकर आप से पुत्र की याचना करता हूँ आप कृपया मुझको पुत्र दीजिये। इस बात को सुनकर शिवजी ने वर दिया—

बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्रा शत्रुनिषूदना,
स्त्रीणां षोडशसाहस्रं भविष्यति शतार्धकम् ॥५७॥
तासु पुत्रा दश दश भविष्यन्ति महाबलाः ॥५८॥

अर्थ—अयि कृष्णा! तू चिन्ता मत कर तेरे १६ हज़ार स्त्रियें होंगी और एक २ में दश २ पुत्र होंगे। तुम्हारी यह कामना पूर्ण हो जावेगी। वेद कहता है—

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः,
रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं,
धीरमजरं युवानम् ॥ अ० १।८।४४ ॥

परमात्मा अकाम निष्काम धैर्यवान् अमर स्वयंभू उत्पन्न न होने वाला है। आनन्दमय, नित्यतृप्त, पूर्ण काम है, कहीं से भी न्यून नहीं, उसको इच्छा नहीं। उसी सर्वव्यापक परमात्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु से बच सकता है और कोई रास्ता नहीं। प्रिय पाठक! इस मन्त्र में परमात्मा को पूर्ण काम बतलाया है और कृष्ण जी पुत्र के लिये विलाप वा तप, प्रार्थना करते हैं। वे कैसे परमात्मा हो सकते हैं? जब वे ईश्वर नहीं तो उनकी मूर्ति को परमात्मा समझकर पूजना अज्ञता नहीं तो और क्या है?

वरुण आदि देवता

इन चार बड़े पौराणिक परमात्माओं को छोड़ कर जो बाकी वरुण आदि देवता रह गए हैं। उन की पूजा भी पौराणिक लोग करते हैं इस लिए इस विषय में भी लिखना आवश्यक है। उसी देवी भागवत के स्कं० ५ अ० १९ में लिखा है—

ये वा स्तुवन्ति मनुजा अमरान् विमूढाः,
मायागुणैस्तव चतुर्मुख विष्णुरुद्रान् ।

शुभ्रांशु वह्नि-यम-वायुगणेशमुख्यान् ,
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये ॥६॥

अर्थ--जो आप के मायाजाल में फँसकर मूर्ख आदमी देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चांद, आग, यम, वायु, गणेश जिनमें प्रधान हैं, उन देवताओं की पूजा करते हैं वे भी मूर्ख हैं। क्या तेरी शक्ति के विना ये कुछ कर सकते हैं? यहां सम्पूर्ण देव पूजकों को मूढ़, अज्ञानी, मूर्ख बतलाया है।

अन्धकूप में गिरते हैं--**ज्ञात्वा सुरास्तव वशानसुरार्दितांश्च,**
ये वै भजन्ति भुविभावयुता विभग्नान्।
धृत्वा करे सुविपुलं खलु दीपकं ते,
कूपे पतन्ति मनुजा विमलेऽतिघोरे ॥१४॥

अर्थ—जब जानते हैं कि सब देवता आपके वश में हैं, और प्राणों के खतरे में पड़ कर आपकी शरण में आते हैं, फिर भी इन टूटे हुए देवताओं में परमात्मा की भावना करके इनको पूजते हैं वे हाथ में विमल दीवा लेकर जानकर अन्धकारमय अन्धेरे वाले जलरहित कुएं में गिरते हैं। करघा छोड़ तमाशे जाय नाहक चोट जुलाहा खाय। एक इन देवताओं की पूजा करें अपने तन मन धन समय को व्यर्थ नष्ट करें और इतना होने पर भी इसका फल यह मिले कि—अन्धेरे कुएं में गिरें।

इससे तो यही अच्छा है कि—इनकी पूजा ही न की जाय।

मूर्ति पूजकों को दुःख

हमने पुराण के प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कृष्ण आदि खुद अपने मुंह से यह मानते हैं कि हम परमात्मा नहीं जब वे स्वयं अपने आपको अनीश्वर कहते हैं तो फिर उनको ज़बरदस्ती परमात्मा अपने स्वार्थ के लिये बनाना क्या मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त वाली कहावत को चरितार्थ नहीं करता? इनको अनीश्वर ही नहीं लिखा किन्तु जो इनकी पूजा करेंगे उनको दण्ड भी लिखा है। इस बात को सिद्ध करने के लिये नीचे प्रमाण दिये जाते हैं—

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं,
मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां,
तान् सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात् ॥दे० ५।१९॥

अर्थ—जिस हरि ने भृगु के शाप से मीन मछली, कमठ कछुआ, नृसिंह के अवतार धारण किये और पीछे वामनादि बनकर संसार में छल किया, जो उस विष्णु के अवतारों की भक्ति करेंगे उनको क्यों नहीं मृत्यु का भय होगा अर्थात् अवश्य होगा। वेद कहता है—

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः । उस भगवान् को जान कर उसका भक्त मौत से नहीं डरता किन्तु अवतारों के भक्त को अवश्य भय होगा ।

शंभो पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं,
शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य ।
तं ये नराः भुवि भजन्ति कपालिनं तु,
तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः ॥१९॥

अर्थ—जिस शिवजी का भृगु के शाप से.........गिर गया था और जो हाथ में मनुष्यों की खोपड़ियां रखता है । उस शिव जी की जो उपासना करते हैं उनको इस लोक वा परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलेगा । चढ़ा लो शिवजी पर पानी और बिल्व पत्तियें और जाओ नरक में । एक तो उनकी पूजा करें और इससे दोनों लोकों में दुःख मिले । **प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्** । कीचड़ के धोने से यही अच्छा है कि उसको छुआ ही न जाय ।

योऽभूद्गजानन गणाधिपतिर्महेशात्,
तं ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः ।
जानंति ते न सकलार्थ कलावदात्रीं,
त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम् ॥२०॥

अर्थ—जो गणों के अधिपति शिवजी से पैदा हुआ है उस गणेश की जो मूर्ख आदमी पूजा करते हैं। वे भी सकल कला देने वाली आपको नहीं जानते इस लिये मूर्खता से गणेश की पूजा करते हैं।

क्लिश्यन्ति तेऽपिमुनयस्तव दुर्विभाव्यं,
पादांबुजं नहि भजन्ति विमूढचित्ताः।
सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्वं,
ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम् ॥२३॥

अर्थ—वे मुनि भी नरक में जायेंगे जो आप के चरणामृत को छोड़ कर सूर्य, अग्नि की पूजा करते हैं। उन्होंने सैंकड़ों वेद मन्त्र पढ़ कर भी उनके सार को नहीं जाना।

उपर्युक्त उदाहरणों से भली प्रकार सिद्ध हो गया कि जो गणेश, सूर्य, अग्नि आदि अवतारों की पूजा करेंगे वे नरक में जायेंगे और वे मूढ़ अज्ञानी हैं।

मूर्ति पूजकों को पदवी

अब जो पदवी मूर्तिपूजक को, प्रदान की है वह भी ज़रा ध्यान से सुनिये। श्रीमद्भागवत, स्कं० १० । अ० ८४ में लिखा है—

नाम्बुमयानि तीर्थानि न देवाः मृच्छिलामयाः।

ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥

अर्थ—पानी वाले तीर्थ नहीं होते, मही और पत्थरों की मूर्तियें देवता नहीं होतीं। वे बड़े लम्बे काल में भी पवित्र नहीं करते। साधु महात्मा दर्शन ही से पवित्र करते हैं। इस श्लोक में स्पष्ट यह बतलाया है कि तीर्थों में नहाने से और मूर्तिपूजा से मनुष्य पवित्र नहीं होता। कई पौराणिक इस के अर्थ में गड़बड़ करके यह कहते हैं कि इस का यह अर्थ नहीं जो तुम करते हो किन्तु यह है—

तीर्थ वा मूर्ति पूजा देर से पवित्र करती है और साधु लोग शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं।

यह अर्थ इन का ठीक नहीं। **गंगा गंगेति यो ब्रूया-द्योजनानां शतैरपि।** जो आदमी चार सौ कोस से गंगा २ करता है वह सब दुःखों से छूट कर विष्णु लोक को जाता है। कहिये कहां तो इस श्लोक में गंगा का इतना माहात्म्य और तुम कहते हो कि—वह देर से पवित्र करती है।

यह श्लोक देवी भागवत में दूसरी प्रकार से आता है—

नह्यम्बुमयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णु भक्ताक्षणादहो ॥

दे० भा० स्कं० ६ अ० ७ श्लो० ४२ ॥

अर्थ—पानी के तीर्थ नहीं होते मट्टी और पत्थरों के देवता नहीं होते, वे किसी काल में भी पवित्र नहीं करते। अब कैसे श्लोक का अर्थ उलटा करोगे? यहां तो स्पष्ट ही लिख दिया है कि मूर्तिपूजा मनुष्य को पवित्र नहीं करती॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका:,
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं,
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया॥१२॥

अर्थ—अग्नि, सूर्य, चांद, तारा, भूमि, जल, आकाश, वायु, वाणी मन आदि पदार्थों की उपासना करने से पाप दूर नहीं होता क्योंकि यह परमात्मा से भेद करने वाले हैं। इनकी उपासना करने से परमात्मा की उपासना नहीं होती। जो नवग्रह की पूजा करने वाले लोग हैं वे इस श्लोक पर भली प्रकार विचार करें इस श्लोक में स्पष्ट सूर्यादि ग्रहों की पूजा का निषेध है। उनकी पूजा परमात्मा से अलग करने वाली बतलाई है।

गोखरः—**यस्यात्मबुद्धि कुणपे त्रिधातुके,**
स्वधी कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचित्,
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥१३॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ तीन मलों से बने हुए शरीर में आत्मबुद्धि करता है। स्त्री आदि में स्वबुद्धि, पृथिवी से बनी हुई मूर्तियों में जो पूज्यबुद्धि और पानी में तीर्थबुद्धि कभी भी करता है वह गोखर अर्थात् गौओं का चारा ढोने वाला गधा है जो उपर्युक्त दो श्लोकों में मूर्तिपूजा का निषेध करने पर भी जो मूर्तिपूजा करता है, उसको भागवत ने गोखर की पदवी देदी है। इससे बढ़ कर मूर्तिपूजा का खण्डन वा उनका निरादर क्या हो सकता है; कईपौर ाणिक सलिल शब्द को सप्तमी विभक्ति मानकर जो यह अर्थ करते हैं कि पानी में जो तीर्थ-बुद्धि नहीं करता वह गोखर है। यह ठीक नहीं करते, क्योंकि इनका अर्थ मानने से श्लोक का यह अर्थ होगा कि जो शरीर को आत्मा नहीं मानता, स्त्री आदि में स्वबुद्धि नहीं करता वह गोखर है। अगर ऐसा अर्थ करोगे तो नास्तिक ठहरोगे क्योंकि शरीर को आत्मा मानने वाला नास्तिक होता है। अतः हमारा ही अर्थ ठीक है।

देवी

अब एक बात रह गई और वह यह कि अगर ब्रह्मादि ईश्वर नहीं तो नहीं सही देवी की मूर्ति तो परमात्मा है। इस की ही कर लेंगे फिर भी मूर्तिपूजा तो रह ही गई।

यह इनका कहना ठीक नहीं क्योंकि देवी भी परमात्मा नहीं

है। देवीभागवत स्कं ५ अ० १६ में लिखा है—

नाहं पतिवरानारी वर्तते मम पतिः प्रभुः।
सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहास्थिरः ॥६॥
निर्गुणो निर्ममोनन्तो निरालम्बो निराश्रयः।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णपूर्णाशयः शिवः ॥७॥
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा।
तत् सांन्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् ॥
जाडहं तस्य संयोगात् प्रभवामि सचेतना ॥३७॥
अयस्कांतस्य सान्निध्यात्
आयसश्चेतना यथा।

अर्थ—अयि राक्षस! मैं पति चुनने वाली स्त्री नहीं हूं, मेरा पति सर्वकर्ता, सर्वसाक्षी, निष्काम, निर्गुण, अनन्त, सबका आश्रय-दाता, सर्वव्यापक पूर्ण मौजूद है। वही मेरा सच्चा पति है, मै तो जड़ प्रकृति हूं, उसी के संयोग से मुझ में चेतनता आती है। जैसे चुम्बक के संयोग से लोहे में हरकत आती है। वैसे ही मेरा हाल है, मैं स्वयं जड़ चीज़ हूं।

यहां देवी स्वयं कहती है कि मैं परमात्मा नहीं, परमात्मा दूसरा है। वही मेरा मालिक है मैं तो जड़, बेजान चीज़ हूँ। अगर कोई शंका करे कि बेजान कैसे है, तो कहती है उसी के

से मैं चेतन हूं स्वयं मुझ में कोई चेतनता नहीं।

जिस देवी के लिये सम्पूर्ण देवताओं की निन्दा की, अन्त में वह देवी भी जवाब दे गई और कहती है कि मैं भी परमात्मा नहीं हूं।

मूर्तिपूजा किस ने चलाई

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले
न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां
सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम् ॥१२॥

अर्थ—इस घोर कलियुग में पुराणों के बनाने वाले धूर्त चतुर लोगों ने शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि की पूजा अपने पेट भरने के लिये चलाई है। लीजिये इस बात का भी फैसला कर दिया कि इन देवताओं की पूजा क्यों चलाई है।

परस्पर विरोध

पौराणिक लोग कहा करते हैं कि हम मूर्तियों में सर्वव्यापक एक परमात्मा की पूजा करते हैं, उनको इस प्रकरण का अध्ययन अच्छी प्रकार करना चाहिये। अगर ब्रह्मा, विष्णु आदि एक ही परमात्मा हैं तो शिवादि का इतना आपस में विरोध वा

लड़ाई झगड़े क्यों हैं ? वास्तव में जब किसी देवता की भक्ति एक पुराण में बतलाई जाती है, तो बाकी सम्पूर्ण देवताओं की निंदा अनीश्वरत्व वा सब देवताओं से कथाएं बनाकर उसकी स्तुति कराई जाती है। यही हाल सम्पूर्ण पुराणों का है।

भागवत में कृष्ण को परमात्मा बाकी सब देवताओं को नीच और कृष्ण का भक्त लिखा है।

भविष्य में सूर्य को परमात्मा ब्रह्मा, 'विष्णु और कृष्ण को उसके दास लिखा है। देवी भागवत में देवी को परमात्मा अन्य सब देवताओं को नीच वा अपूज्य लिखा है। इस बात को सिद्ध करने के लिये भी कुछ प्रमाण देता हूँ।

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अ० ६—

एक समय विष्णु जी लेटे हुए थे और (ब्रह्मा) जी आ-गये। विष्णु ने उनका कोई आदर नहीं किया, तब (ब्रह्मा) बोले—

आगतं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा यो दृप्तवच्चरेत् ।
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥४॥

अर्थ—जो दुष्ट आदमी गुरु को आता देख उसका आदर न करे, उस द्रोही के लिये शास्त्र में प्रायश्चित लिखा है। यह सुनकर विष्णु ने कहा—

मन्नाभिकमलाज्जातः पुत्रस्त्वं भाषसे वृथा ।
अहमेव वरो न त्वं अहं प्रभुरहं प्रभुः ॥

परस्परं हंतुकामौ चक्रतुः समरोद्यमम् ॥९॥

अर्थ—तू मेरी नाभि से पैदा हुआ है मेरा बेटा होकर बकवास करता है। विष्णु कहता है मैं परमात्मा हूं ब्रह्मा कहता है, नहीं मैं परमात्मा हूं। एक दूसरे को मारने के लिये तैयार हो गये।

हथियार लेकर आपस में लड़ने लगे। इतने में उन दोनों के मध्य में ज्योतिर्मय लिंग पैदा हुआ, दोनों उसका अन्त लेने के लिये चले। जब अन्त न मिला तो ब्रह्मा ने आकर विष्णु के आगे झूठ बोला कि मैं इस का अंत ले आया हूं। शिवजी को क्रोध आया। और भैरव को पैदा किया।

स वै गृहीत्वैककरेण केशं,
तत् पञ्चमं दृप्तमसत्यभाषणम्।
छित्वा शिरांस्यस्य निहन्तुमुद्यतः,
प्रकंपयन् खड्गमति स्फुटं करैः॥ ४ ॥

अर्थ—भैरव ने ब्रह्माके बालों को हाथ से खैंच कर जिस मुँह से ब्रह्मा ने झूठ बोला था उसके शिर को तलवार से काट डाला। और दूसरे शिर भी काटने के लिये तैयार हो गया। यह अवस्था देख कर ब्रह्मा गिड़गिड़ा कर भैरव के चरणों में गिर गया। विष्णु ने शिव से प्रार्थना करके बड़ी कठिनता

से ब्रह्मा की जान बचाई अंत में शाप दिया कि तुमने भूठ बोला है इस लिये तुम्हारी पूजा नहीं होगी।

जिस ब्रह्मा को भविष्य पुराण के ब्राह्मपर्व में इतना बड़ा बतलाया, उसे यहां भूठ बोलने वाला बतलाया है, उसका सिर काटा गया और शिव को सब से बड़ा बतलाया, लेकिन ज़रा भविष्य का ब्राह्मपर्व अ० १५१ को देखिये, शिव की भी क्या गति होती है। एक बार शिव, ब्रह्मा और विष्णु में आपस में झगड़ा हो गया। शिव कहने लगा मैं सब से बड़ा परमात्मा हूं, मैंने ही सारा संसार बनाया है। विष्णु कहने लगा मैंने बनाया है, ब्रह्मा ने कहा तुम दोनों झूठे हो मैंने ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बनाया है।

एवं तेषां प्रवदन्तां क्रुद्धानां च परस्परं।
समाविशत्तदाज्ञानं तमो मोहात्मकं विभो ॥९॥

अर्थ—ऐसे जब वे आपस में क्रोध करके लड़ने लगे, तो उन को महामोह नाम वाला बड़ा अज्ञान हो गया और शिवजी कहने लगे—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो क्व गतस्त्वं महामते
ब्रह्मा च क्व गतो वीर नाहं पश्यामि वां क्वचित ॥

अर्थ—अयि महाबाहो! कृष्ण, तुम कहां गये और ब्रह्मा कहां गया। मैं तुम दोनों को नहीं देखता।

मोहेन महताहं वै तमसा च विमोहितः।

किं करोमि क्व गच्छामि क्व चाहमधुना स्थितः ॥१६॥

अर्थ—मैं बड़े भारी मोह रूपी अज्ञान में डूब गया हूं, क्या करूं कहां जाऊं, मुझ को पता नहीं कि मैं इस वक्त कहां हूं। यह सुन कर कृष्ण जी कहने लगे—

भीम भीम न जानेऽहं क्व भगवान् वर्ततेऽधुना।
ममापि मोहितं चेतः तमसातीव शंकरः ॥२०॥

अर्थ—अयि शिव मैं नहीं जानता आप कहां हैं। मेरा चित्त भी अत्यन्त अज्ञान में डूब गया है।

मुझ को संसार में कुछ नहीं दीखता। यह सुनकर ब्रह्माजी बोले "**न श्रृणोमि न पश्यामि निद्रावशमहं गतः।**" मैं कुछ नहीं देखता न सुनता हूं, मोह के प्रभाव से निद्रा के वश में चला गया हूं। अन्त में तीनों ने मिलकर सूर्य की स्तुति की और सूर्य ने उनका अज्ञान दूर किया तथा वरदान दिया।

श्रीमद्भागवत् में देखिये—

यद्वाचि तंत्र्यां गुणकर्मदामभिः
सुदुस्तरं वत्स वयं सुयोजिताः।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय
प्रोतानसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥स्कं० ६।अ० १५॥

अर्थ—गुण कर्म रूपी रस्सी में बंधे हुए, मैं ब्रह्मा शिवादि सब

उसी की भक्ति करते हैं वा उसी के पीछे चलते हैं जैसे नाक में नकेल डाल कर किसी पशु को मनुष्य जिधर चाहे ले जावे, वही हमारी दशा है।

यहां विष्णु को पूज्य देव बाकी सब को उनका दास बतलाया है। और लीजिये—

लिङ्ग पुराण में लिखा है—

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य योऽन्यां देवतामुपासते।
स राजा सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

अर्थ—जो शिवलिग की पूजा छोड़ कर दूसरे देवता की पूजा करता है, वह राजा बमय अपने देश के रौरव नरक में जाता है।

प्रिय पाठक! ज़रा विचार कर देखिये पौराणिक पण्डित कहा करते हैं कि हम मूर्ति की पूजा नहीं करते किन्तु ब्रह्मादि की मूर्तियों में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं और वह सब मूर्तियों में एक ही है। अगर ब्रह्मा, विष्णु, शिव एक ही ईश्वर हैं तो आपस में लड़ाई झगड़ा और एक दूसरे को छोटा बड़ा कहना कैसे हो सकता है? इस से तो पता लगता है कि इन में भी परमात्मा नहीं। अगर परमात्मा होते तो इतना विरोध आपस में न होता। शिव पूजक के सिवाय दूसरे देवताओं की पूजा करने वाले नरक में जायेंगे, यह क्यों लिखा जब कि आप सब मूर्तियों

में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। यह निरा आपका ढकोसला है जो आपने आर्यसमाज की अकाट्य युक्तियों से डर कर बनाया है।

फूट ने आर्यों का राज्य, धन, दौलत, देश, यौवन आदि सम्पूर्ण सम्पत्तियों को नष्ट कर डाला। फिर आर्य लोग इस हत्यारी को छोड़ते नहीं, इस का क्या कारण है? मुझसे कोई पूछे तो मैं यही कहूंगा कि जिन के उपास्य देवों में आपस में लड़ाई झगड़ा वा फूट हो, उनके उपासकों में क्यों न फूट हो।

जब आर्यों ने एक परमात्मा की पूजा छोड़ कर अनेक उपास्य देव बनाये, तो उनको ईश्वर सिद्ध करने के लिये एक २ देवता के लिये अलग अलग पुराण बनाने पड़े। और उनकी शकलें, कपड़े, भोग, मन्दिर, पूजा की विधियें, तिलक, स्तुति, सवारी आदि भी सब अलग २ बनाने पड़े। यही आर्यों की फूट का सबसे बड़ा कारण है। इसलिये आर्य समाज का यह कार्य है कि वह इन सब झूठे परमात्माओं की पूजा को छुड़ा कर एक ईश्वर की पूजा में प्रवृत्त करावे। जब तक एक उपास्य देव और पूजा का एक तरीका वेश, भाषा, भूषा आदि न हो तब तक इस फूट का आर्य जाति से निकलना कठिन है।

समर्थ को दोष और देवाचार

श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज के आचार के विषय में श्रीमद्भागवत

में जो मिथ्या दूषण लगाये हैं उनसे भी सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण जी परमात्मा नहीं थे। स्वयं भागवतकार ने यह शंका उठाई है—

कथं स धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥

अर्थ—राजा परीक्षित शुकदेव जी से बोले कि हे राजन्! जो धर्म-मर्यादा के बांधने वाले उसकी रक्षा करने वाले होकर इसका जो........(धर्म के विरुद्ध आचरण) क्यों किया।

उत्तर जो भागवत में शुकदेवजी की ओर से दिया गया है वह पाठकों को विशेष ध्यान से पढ़ने योग्य है। लिखा है—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसं।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ।३३।३०॥

अर्थ—जो समर्थ पुरुष होते हैं वे धर्म से उलटे चलते हैं, इससे उनको कोई दोष नहीं होता, जैसे आग में सब कुछ डाला हुआ भस्म हो जाता है। जो पौराणिक लोग कहा करते हैं कि कृष्ण ने कोई रास लीला में अधर्म नहीं किया वे इन श्लोकों को ध्यान से पढ़ें। यहां स्पष्ट भागवतकार ने माना है कि उन्होंने (धर्म के विरुद्ध आचरण) किया जो लोग कहते हैं समर्थ को दोष नहीं, उनसे नीचे लिखे प्रश्न पूछने चाहियें—

(१) अवतार धर्म की रक्षा के लिये होता है वा उसको तोड़ने के लिये? अगर धर्म की रक्षा के लिये होता है तो यह पाप

क्यों किया ?

(२) जब पौराणिक पण्डित कहते हैं कि निराकार परमात्मा भी सब कुछ कर सकता है किन्तु अवतार इस लिये होता है ताकि मर्यादा बांधने से लोग भी वैसा ही करें, क्या जैसे अवतार पाप करते हैं वैसे लोग भी करें।

(३) जब कृष्ण परमात्मा के अवतार थे तो पाप क्यों किया परमात्मा तो पाप से रहित है।

(४) शास्त्र के नियम भंग का जितना दोष शास्त्रज्ञ को होता है उतना एक शास्त्र से अनभिज्ञ मूर्ख को नहीं। कानून के विरुद्ध चलने का जितना दण्ड एक वकील को होता है उतना एक ५ साल के बच्चे को नहीं होता, दोष तो होता ही समर्थ को है।

जूआ

वेद में लिखा है "अक्षैर्मा दीव्यः" जूआ मत खेलो लेकिन पद्म पुराण में शिव पार्वती का जूआ खेलना, जूआ खेलने की विधि बताना आदि अनेक बातें पुराणों में ऐसी लिखी हैं जो अवतार वा देवताओं को आचार से भ्रष्ट सिद्ध करती हैं। जिसका स्वयं आचार भ्रष्ट हो उसकी मूर्ति की पूजा करने से मनुष्य कैसे पवित्र हो सकता है ? हमने पांच युक्तियें सप्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया कि पुराणों की रू से भी मूर्ति पूजा ठीक नहीं।

तीसरा अध्याय

शंका समाधान

परमात्मा का मुख आदि

प्रश्न--वेद में लिखा है—

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षुषि ते भवा।

याते रुद्र शिवा तनू अघोरा पापकाशिनी ॥

अर्थ---इत्यादि अथर्व कांड ११ के अनेक वेद मन्त्रों में परमात्मा के मुंह नाक, आंख, हाथ, पांव, शरीर आदि का स्पष्ट वर्णन

आता है। इन स्पष्ट शरीर बताने वाले मन्त्रों की मौजूदगी में कौन कह सकता है कि परमात्मा की मूर्ति नहीं है।

उत्तर—सनातनधर्मी पण्डितों को बीमारी है। वे जहां कहीं वेद मन्त्रों में मुख, कान, नाक आदि शब्दों को देखते हैं झट कह देते हैं कि इन मन्त्रों में परमात्मा के मुखादि का विधान है। इन लोगों को इस बात का ध्यान नहीं रहता कि राजा, प्रजा, जीवात्मा प्रधान पुरुष आदि का वर्णन भी तो वेद में आता है। सर्व मन्त्रों में केवल परमात्मा का ही वर्णन तो नहीं आता इस लिये वेद मन्त्रों का अर्थ करते समय इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये जैसे मीमांसा में लिखा है—

श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां
समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात् ।

अर्थ—जब श्रुति, मन्त्र, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्या आदि के समवाय में उत्तरोत्तर दुर्बल होता है। इस सूत्र के अनुसार प्रकरणादि का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। जो मन्त्र पौराणिकों की ओर से पेश किये जाते हैं उनका अर्थ परमात्मा नहीं, किन्तु उनमें राजा को नमस्कार आदि करना लिखा है, कई पौराणिक कहा करते हैं कि यहां स्पष्ट पशुपति शब्द आता है, जिसका अर्थ महादेव होता है यह भी इनका

कहना ठीक नहीं। पशुपति नाम राजा का है जैसे अथर्ववेद में लिखा है **"प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम्"** राजा गौ ओषधि आदि का प्रिय पति रक्षक है, इस लिये इन दोनों मन्त्रों में इन्द्र पशुपति आदि नाम परमात्मा के नहीं किन्तु राजा के हैं। जहां कहीं वेद में मुख, कान, नाक आदि का वर्णन आता है वहां सब जगह इन मन्त्रों में प्रधान पुरुष राजा, प्रजा, आदि जीव का वर्णन है न कि परमात्मा का ।

चक्रपाणि और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—**"नीलग्रीवाय नमः, चक्रपाणये नमः"** आदि यजु. १६ मन्त्रों में स्पष्ट ही नीलकण्ठ महादेव वा चक्रधारी विष्णु का वर्णन है, फिर समाजी मूर्तिपूजा क्यों नहीं मानते ?

उत्तर—यहां भी चक्रपाणि वा नीलग्रीव का अर्थ पौराणिकों के कल्पित बैल पर चढ़ने वाले महादेव का नहीं है। किन्तु राजा का है। जिस राजा के गले में नील मणियों का हार हो उसको नीलग्रीव कहते हैं। तथा शासनरूपी चक्र वा शत्रु-नाशक चक्र हथियार जिस राजा के हाथ में हो उसको चक्र-पाणि कहते हैं। चक्रवर्ती राज्य ऐसे ही चक्रधारी राजाओं की कृपा से कहलाता है। जो लोग चक्रपाणि शब्द का अर्थ परमात्मा करते हैं, वहां चक्र का अर्थ है संसार-चक्र तथा पाणि का अर्थ है व्यापार वा व्यवहार साधक शक्ति अर्थात् परमात्मा

संसार चक्र की उत्पत्ति पालना संहार आदि व्यापार को अपनी शक्ति के अधीन रखने वाला होने से चक्रपाणि कहलाता है। "चक्रं संसारचक्रं पाणौ व्यवहारसाधिकायां शक्तौ यस्य स चक्रपाणि।" संसार चक्र है व्यवहार साधक शक्ति में जिस के वह चक्रपाणि है।

षड्विंश ब्राह्मण और मूर्त्तिपूजा

प्रश्न—षड्विंश ब्राह्मण में लिखा है—

यदा देवायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्ति निमिलंति इत्यादि ॥

अर्थ—जब देवताओं के स्थान कांपते हैं तो देवताओं की प्रतिमा हंसती हैं रोती हैं और नाचती हैं चमकती हैं प्रतिमाओं को पसीना आता है। या कि नेत्रों को तेज़ी से खोलती हैं या नेत्रों को बन्द करती हैं। उस समय में प्राय-श्चित्त होता है ॥

ब्राह्मण वचन में कितना स्पष्ट लिखा है कि देवताओं की मूर्तियें हंसती हैं गाती हैं नाचती हैं। अगर देवताओं की मूर्तियें न होतीं तो उनकी पूजा न होती। इस पाठ की संगति कैसे हो हो सकती है।

उत्तर—मूर्तिपूजा के लिये पौराणिकों के विचार में यह अकाट्य प्रमाण है इस प्रमाण को देकर सनातनी

फूले नहीं समाते । किन्तु इस से भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती । इसके विषय में नीचे लिखी युक्तियां हैं ।

(१) इस प्रमाण में लिखा है कि देवताओं की प्रतिमायें मूर्तियें हंसती, नाचती, गाती, रोती हैं । बस जिस दिन पौराणिक इन मन्दिरों में रखी हुई पीतल, लोहे, मट्टी, पत्थर आदि की मूर्तियों को हंसते रोते गाते नाचते दिखला देंगे उस समय हम मूर्ति पूजा को मान लेंगे । हम पुजारी वा दूसरे मूर्ति-पूजकों से पूछते हैं कि क्या कभी आपने इन मूर्तियों को ये काम करते देखा है ? अगर नहीं देखा तो आप को भी इस प्रमाण के अनुसार मूर्ति पूजा छोड़ देनी चाहिये जब तक ये मूर्तियें हंसने आदि का कार्य न करें ।

(२) इस प्रमाण में मूर्तियों का हंसना आदि लिखा है लेकिन मन्दिरों में रखी हुई मूर्तियों में इन कामों में से कोई भी कार्य दिखाई नहीं देता । इस से पता लगता है कि वे मूर्तियें वा देवता जो हंसते रोते हैं कोई दूसरे ही हैं ।

(३) अगर पौराणिक मूर्तियों में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं जैसे कि उनकी बनाई मूर्तिपूजा मंडन की पुस्तकों में लिखा है तो फिर बतलायें कि परमात्मा किस के भय से रोता है वा कांपता है, यह रोना कांपना परमात्मा में नहीं हो सकता । टूटना, रोना, डरना आदि सांसारिक जीवों में हो

सकता है न कि परमात्मा में। वेद तो कहता है **'तमेव विद्वन् न बिभाय मृत्यो:'** उस ईश्वर को जानने वाला मौत से नहीं डरता जब उसका भक्त भी डरता कांपता नहीं तो परमात्मा कैसे डर वा कांप सकता है।

विराट् स्वरूप

प्रश्न—वेद में लिखा है **'यस्य भूमि प्रमान्तरिक्षमुतोदरं दिवं यश्चक्र मूर्धानं तस्मै ज्योष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।'** परमात्मा की भूमि पैर, अन्तरिक्ष पेट, द्यु लोक शिर इत्यादि परमात्मा के मुँह, कान, नाक, पेट, आंख आदि सब अवयवों का वर्णन किया है, फिर आर्य समाजी क्यों मूर्ति पूजा से इनकार करते है।

उत्तर—इस मन्त्र में रूपक अलंकार है। मुझको इन पौराणिकों की बात पर बड़ा आश्चर्य होता है। ये शास्त्र को पढ़ते हुए भी अपने स्वार्थ के लिये उस पर लेपन फेरने की कोशिश करते हैं। अगर कोई आदमी किसी को शेर कहता है तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि उसके पूंछ आदि भी हैं बल्कि उस का अर्थ यह है कि वह शेर की तरह बलवान् है। पैर की तरह चलने का साधन होने से पृथ्वी को पैर, पेट की तरह पोला होने से

अन्तरिक्ष को पेट, आंखों की तरह दिखाने वाले होने से सूर्य वा चांद को आंख कहा है। इस शास्त्र के मर्म को न समझ कर ये पौराणिक ऐसी ऊटपटांग बातें कहते हैं।

अग्नि और ईश्वर

प्रश्न—जैसे आग, लकड़ी, पत्थर, कोयले आदि में प्रथम निराकार होता है, पीछे साकार होजाता है वा सब को दिखाई देता है, इसी प्रकार परमात्मा पहले निराकार होता है, पीछे साकार हो जाता है।

उत्तर—शास्त्रों में लिखा है कि रूप अग्नि का स्वाभाविक गुण है, जिसका स्वाभाविक गुण रूप हो वह कभी निराकार नहीं हो सकता। शास्त्रों में अग्नि की दो अवस्थायें बतलाई हैं—एक उद्भूत और दूसरी अनुद्भूत। जब अग्नि के अवयव अलग २ होते हैं, तब वह दिखाई नहीं देती किन्तु जब रगड़ आदि से प्रकट होते हैं तब दिखाई देती है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह निराकार है, यदि दूध में घी नहीं दीखता वा तिल में तेल नहीं दीखता तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह घी वा तेल पहले नहीं था और पीछे से आ गया। जो चीज़ें निराकार हैं वे कभी साकार नहीं हो सकतीं। जीवात्मा निराकार है वह किसी अवस्था में

साकार नहीं होता आकाश निराकार है वह किसी भी अवस्था में साकार नहीं होता।

ब्रह्म के दो रूप

प्रश्न—"द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तश्चैवामूर्तश्च" ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त और दूसरा अमूर्त जब श्रुति परमात्मा के दो रूप मूर्त वा अमूर्त अर्थात् साकार वा निराकार बतलाती है तो आप मूर्ति पूजा से क्यों घबराते हैं?

उत्तर—इस मन्त्र का अर्थ यह नहीं है जो तुम करते हो किन्तु प्रकरण पढ़ने से यदि यह अर्थ होता है कि ब्रह्म के दो रूप हैं यहां स्वस्वामी भाव सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति है जैसे कोई कहता है रामदेव के दो लड़के हैं इसका यह अर्थ नहीं होता कि रामदेव या लड़के एक ही हैं। इसी श्रुति को आगे चल कर खोला है—अन्तरिक्ष वा वायु अमूर्त, वा पृथ्वी, जल, अग्नि, मूर्त हैं। परमात्मा इन दोनों प्रकार के भूतों का स्वामी है कई लोग कहते हैं कि रूप शब्द का अर्थ ब्रह्म का स्वरूप है, यह ठीक नहीं। रूप शब्द रूपवान् वा रूप दोनों का वाचक है। आगे चल कर जो रूपवानों का रूप मूर्त अमूर्त भेद बतलाया है वह ब्रह्म का नहीं किन्तु भूतों का बतलाया है। कई पौराणिक पण्डित कहा करते हैं कि अग्नि, वायु, पृथ्वी आदि भी तो ब्रह्म ही है। इन पौराणिकों की बुद्धि भी विचित्र ही है भला अगर सब कुछ ब्रह्म है तो मूर्तिपूजा कौन

करेगा ? भोग कौन लगावेगा ? पूज्य, पूजा करने वाला, वा जिन साधनों से पूजा करते हैं सब ब्रह्म ही है।

अक्षर ज्ञान और मूर्तिपूजा

प्रश्न—जैसे ज्ञान निराकार है वा क, ख, ग आदि अक्षर निराकार हैं किन्तु उस निराकार ज्ञान तथा अक्षरों की प्राप्ति के लिये वेद की पुस्तक साकार वा निराकार अक्षरों की प्राप्ति के लिये साकार अक्षर होते हैं इसी प्रकार निराकार परमात्मा की प्राप्ति के लिये कल्पित बनावटी साकार मूर्तियें होती हैं।

उत्तर—यहां भी पौराणिकों का वदतो-व्याघात दोष है, कभी तो ये कहते हैं निराकार परमात्मा स्वरूप से साकार हो जाता है इसलिये उसके शास्त्र में साकार वा निराकार दो रूप बतलाये हैं। कभी कहते हैं वह है तो निराकार किन्तु जैसे जीवात्मा निराकार होता हुआ भी जब शरीर धारण करता है तो उसके शरीर की मूर्ति बनाई जाती है। यहां इन दोनों बातों से विरुद्ध यह बात है कि न तो वह शरीर धारण करता है और न साकार है किन्तु जैसे अक्षर के निराकार होने पर भी उसकी प्राप्ति के लिये कल्पित बनावटी साकार अक्षर होते हैं इसी प्रकार परमात्मा की कल्पित साकार बनावटी मूर्तियें हैं। इसका उत्तर नीचे लिखा है—

(१) जो साकार अक्षर होते हैं वह निराकार अक्षरों की शकल नहीं हैं, अगर निराकार अक्षरों की शकल होती तो एक जैसी होनी चाहिये थी। किन्तु संस्कृत, फ़ारसी, अंगरेज़ी, अरबी, जापानी आदि भाषाओं में इन अक्षरों की शकलें अलग अलग पाई जाती हैं, इससे पता लगता है कि ये शकलें निराकार अक्षरों की नहीं।

(२) साकार अक्षरों से निराकार अक्षरों वा शब्दों का बोध नहीं होता; किन्तु निराकार अक्षरों वा शब्दों से साकार का बोध होता है। जब तक किसी बालक को निराकार अक्षर वा शब्दों से साकार अक्षरों का ज्ञान बार बार न करा दिया जावे तब तक लिखे होने पर भी अक्षर वा शब्द-बोध नहीं होता।

(३) यह बात ग़लत है कि साकार अक्षरों के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। कई प्रज्ञाचक्षु जन्म अन्धे विना साकार अक्षरों के निराकार अक्षरों से ही बड़े बड़े पण्डित हो जाते हैं।

(४) अलग २ स्वरूप वाले, अलग अलग लक्षण वाले नित्य वा अनित्य साकार वा निराकार अक्षर भिन्न भिन्न होते हैं कोई किसी की मूर्ति वा शकल नहीं होती। स्याही से काग़ज़ पर लिखे अक्षर अलग होते हैं वा जो हम मुख से उच्चारण करते हैं वे अक्षर अलग होते हैं।

(५) अगर कहो, कि "एक नहीं हैं तो साकार अक्षरों से निराकार

अक्षरों का बोध क्यों होता है ?" इसका उत्तर यह है—किसी की शकल होना कुछ और बात है और बोध होना दूसरी बात है, जैसे देवदत्त का बूट देखकर कोई आदमी कहता है कि देवदत्त घर में है। यहां बूट को देखकर देवदत्त का बोध होने से यह नहीं सिद्ध होता कि बूट देवदत्त की शकल है।

(६) सम्पूर्ण संसार को देखकर भगवान् का ज्ञान वा बोध होता है इससे ईश्वर की मूर्ति वा शकल या संसार की पूजा सिद्ध नहीं होती।

(७) जितनी मूर्तियें पौराणिक लोगों ने मन्दिरों रक्खी हैं, उन में से निराकार आत्मा की कल्पित मूर्ति कोई भी नहीं है; किन्तु सब साकार ब्रह्मा आदि की मूर्तियें हैं और उनको हम पुराण वा वेद का प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं कि वे परमात्मा नहीं थे।

योगदर्शन और मूर्तिपूजा

प्रश्न—योगदर्शन में लिखा है—'**यथाभिमत ध्यानाद्वा**' जो चीज़ किसी मनुष्य को अभिमत या विवांछित हो उसी का ध्यान कर लेना चाहिये इसमें कोई हानि नहीं। इसलिये इस सूत्र के अनुसार हम ब्रह्मा आदि मूर्तियों की पूजा करते हैं।

उत्तर—योगदर्शन को हम दो विभागों में बांट सकते हैं एक। वह हिस्सा है जिसमें अनेक प्रकार की सिद्धियें बतलाई हैं, दूसरा

वह भाग जिस में परमात्मा की प्राप्ति है। ईश्वर की प्राप्ति के लिये यह बतलाया है कि ये सम्पूर्ण अणिमा आदि सिद्धियें समाधी वा योग में बाधक हैं इनको परमात्मा की प्राप्ति के इच्छुक को छोड़ देना चाहिये। प्रमाण यह है—

"ते समाधावुपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः ॥"

यो० पा० ३। सू० ३६॥

ये समाधि में विघ्न हैं व्युत्थान में सिद्धियें हैं।

इसी लिये योग वा सांख्य में ध्यान के दो लक्षण किये हैं जो परमात्मा का ध्यान है उसके विषय में लिखा है—**"ध्यानं निर्विषयं मनः"** सम्पूर्ण सांसारिक विषयों से मन को हटा कर परमात्मा में लगाना ध्यान है। यह केवल ईश्वर विषयक ध्यान है दूसरा—**'तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्'** किसी एक देश में चित्त को बांधना और उसी विषय में एकाग्रता का नाम ध्यान है, इस ध्यान के द्वारा अनेक प्रकार की विद्याओं का साक्षात्कार किया जाता है इसी लिये योग में लिखा है— **"नाभिचक्रे कायाव्यूहज्ञानम्"** नाभिचक्र में ध्यान धारणा समाधि करने से शरीर की बनावट का ज्ञान होता है। **'सूर्ये संयमात् भुवन ज्ञानं'** सूर्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है। **'कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः'** कंठ कूप नाड़ी में संयम करने से भूख और प्यास की निवृत्ति होती है। इत्यादि

अनेक सूत्रों में ध्यान धारणा समाधि का फल परमात्मा की प्राप्ति नहीं लिखा किन्तु अनेक प्रकार की विद्या वा सिद्धियों का फल बतलाया है, जैसे आज कल के सायसंदा लोग आकाश में उड़ना, दूर के शब्दों को सुनना आदि कार्य भौतिक यंत्रों के द्वारा करते हैं वैसे ही योगी भी अनेक भूतों में संयम करके उनके गुणों से लाभ उठाकर दूर के शब्दों को सुनना आदि अनेक कार्य कर सकता है किन्तु ये सब सिद्धियें परमात्मा प्राप्ति की साधक नहीं किन्तु बाधक हैं, इसीलिये इनके छोड़ने का योग में उपदेश है।

दूसरी बात यह है कि पौराणिक यह धोखा देते हैं कि हम मूर्ति का ध्यान करते हैं, किन्तु वे मूर्ति को परमात्मा मान कर उसकी पूजा करते हैं यह हम आगे चल कर लिखेंगे। जैसे मनुष्य अपने शरीर में के किसी हिस्से में मन को लगा कर उस उस हिस्से वा उससे पैदा होने वाली विद्या वा उस अङ्ग के फल को प्राप्त होता है। इसी प्रकार वनस्पतियों में ध्यान धारणा समाधि से मन को एकाग्र करने वाला वनस्पति विद्या वा पक्षियों में मन को लगाने वाला पक्षिविद्या, जलजन्तुओं में ध्यान करने वाला जलजन्तुविद्या वा पहाड़ धातु आदि में मन लगाने वाला सुवर्ण आदि धातुविद्या, आकाश में ध्यान लगाने वाला ज्योतिष् विद्या का साक्षात्कार करता है। इस ध्यान का फल अनेक प्रकार की विद्याओं का साक्षात्-

कार है परमात्मा की प्राप्ति नहीं।

मूर्त्ति में व्यापक की पूजा

प्रश्न—हम मूर्ति की पूजा नहीं करते किन्तु उस में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं। यह नहीं कहते कि हे पत्थर! तुझको नमस्कार है वा तू परमात्मा है, बल्कि सर्वव्यापक भगवान की ही स्तुति करते हैं।

उत्तर—यदि मूर्तियों की पूजा नहीं करते और सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान करते हो तो नीचे लिखी युक्तियों का उत्तर दो—

(१) भविष्य पुराण मध्यम पर्व अ० ७ में लिखा है—

वासुदेवाग्रतश्चापि रुद्रमाहात्म्यवर्णनं
रुद्राग्रे वासुदेवस्य कीर्तनं पुण्यवर्धनम्।
दुर्गाग्रे शिवसूर्यस्य वैष्णवाख्यानमेव च
यः करोति विमूढात्मा गार्दभीं योनिमाविशेत्॥२१॥

अर्थ—जो मनुष्य वासुदेव की मूर्ति के आगे शिवजी की स्तुति करता है शिवजी के आगे वासुदेव की स्तुति करता है, दुर्गा के आगे शिव सूर्य वा विष्णु की स्तुति करता है, वह मूर्ख आदमी गधे की योनि में जाता है। कहिये श्रीमान् जी! कैसी सर्वव्यापक की पूजा रही? अगर आप मूर्तियों में व्यापक

परमात्मा की पूजा करते हैं तो वह सब मूर्तियों में एक ही व्यापक है फिर यह सज़ा क्यों ? और सुनिये—

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य योऽन्यां देवमुपासते ।
स राजा सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
३५ स्कं० लिं० पु० उ० अ० १२ ॥

अर्थ—जो राजा शिव लिङ्ग की पूजा छोड़ कर दूसरे देवताओं की पूजा करता है वह रौरव नरक में जाता है । क्या इन श्लोकों की मौजूदगी में भी आप यह कहने का साहस करेंगे कि आप मूर्ति में व्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं ?

(२) देवालयेषु सर्वेषु वर्जयित्वा शिवालयं,
देवानां पूजनं राजन् अग्निकार्यं च वा विभो॥भविष्य,ब्रह्मपर्व
अ० २१० श्लोक ५६ ॥

अर्थ—हे राजन् शिवालय को छोड़कर बाकी सब मन्दिरों में देवताओं की पूजा वा हवन करना चाहिये । अगर मूर्तियों में सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं तो शिवालय की निन्दा क्यों की ?

(३) अगर आप सर्वव्यापक का ध्यान करते हैं तो नीचे लिखी बात का उत्तर देवें । नीचे लिखी बात से यह सिद्ध होगा कि आप मूर्ति में व्यापक परमात्मा का ध्यान नहीं करते किन्तु मूर्ति की पूजा करते हैं ।

पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरं ।
खण्डलड्डूकश्रीवेष्टकासाराशोकवर्तिका
फलानि चैव विविधानि लग्नखंडगुडानि च ॥६४॥
भवि० ब्रा० प० अ० १७।

अर्थ—फूल, दीवा, धूप, नैवेद्य, खांड, लड्डू, बत्ती, फल, गुड़ आदि से पूजा करे। इसमें फूलादि से पूजा है न कि ध्यान—

ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात् स्पर्शनं वरं ।
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतःपरं ॥७०॥

अर्थ—ब्रह्म का दर्शन पुण्य है, दर्शन से भी स्पर्शन पुण्य है, और छूने से भी पूजना श्रेष्ठ है, और घृत स्नान अति श्रेष्ठ है।

नैरन्तर्येण यः कुर्यात पक्षं संमार्जनार्चनम् ।
युगकोटीशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते॥भ०ब्रा०अ०१७॥

अर्थ—एक पक्ष तक यदि कोई निरन्तर ब्रह्मा के मन्दिर में झाड़ू देवे तो एक अरब युग तक ब्रह्म लोक में रहता है।

कई बार पौराणिक कह दिया करते हैं कि यह फल श्रद्धा से भक्ति करने से मिलता है। यह भी इनका कहना ठीक नहीं। अगले श्लोक में लिखा है—

कपटेनापि यः कुर्यात ब्रह्मशालां सुमानद ।
संमार्जनादि वै कर्म सोऽपि तत् फलमाप्नुयात ॥३७॥

अर्थ —जो कोई कपट छल से भी ब्रह्मा के मन्दिर में झाड़ू लेपन आदि देता है उसको भी वही फल मिलता है जो एक श्रद्धा से करने वाले को मिलता है। इससे यह पौराणिकों का कथन गलत है कि श्रद्धा वाले को ही मिलता है।

कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत् पापं समुपार्जितं।

पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥५७॥

अर्थ—करोड़ों कल्पों में जो पाप संचित किया है वह ब्रह्मा को घी से स्नान कराने पर सब दूर हो जाता है। इसी प्रकार पुराणों में अनेक स्थान में स्नान, मार्जन, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, मन्दिर बनाना, दीवा जलाना आदि बातों का बड़ा माहात्म्य लिखा है। इन माहात्म्यों के होते हुए पौराणिकों का यह कहना कि हम मूर्ति की पूजा नहीं करते उसमें व्यापक परमात्मा की पूजा यानि ध्यान करते हैं ठीक नहीं। अगर यह मूर्ति का ध्यान करते तो लेपन आदि का इतना माहात्म्य नहीं लिखना चाहिये था, किन्तु ध्यान का लिखना था।

(४) यदि आप सर्वव्यापक परमात्मा की पूजा करते हैं तो फूल आदि में भी परमात्मा है, फिर ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये फूल मूर्ति पर क्यों चढ़ाते हैं? हाथ, मत्थे आदि में भी ईश्वर है उस को क्यों जोड़ते वा झुकाते हैं? इस पर कई पौराणिक कहा करते हैं कि रोटी में भी परमात्मा है और दांतों में भी,

फिर दांत से रोटी क्यों चबाते हैं ? सामग्री में भी परमात्मा है, ऊखल मूसल में भी फिर उसको क्यों कूटते हैं ? यहां भी पौराणिक लोग छल से काम लेते हैं। जैसे पौराणिक मूर्ति के परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये उस पर फूल चढ़ाना आदि कार्य करते हैं। यदि आर्य समाजी भी रोटी को दांत पर दांतों के परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये चढ़ावें, तब उनके लिये यह शंका हो सकती है कि जब रोटी वा दांत दोनों में परमात्मा है तो तुम रोटी को दांतों पर क्यों चढ़ाते हो ? उपर्युक्त युक्तियों से सिद्ध है कि पौराणिक मूर्ति में व्यापक ईश्वर का ध्यान वा पूजा नहीं करते, किन्तु मूर्ति की पूजा करते हैं।

प्रश्न—ईश्वर के सर्वव्यापक होने से मूर्ति में भी है फिर मूर्तिपूजा से आर्यसमाजी क्यों घबड़ाते हैं ?

उत्तर—जब हमारे सम्पूर्ण शरीर वा हृदय में भगवान् विद्यमान है तो हमको क्या आवश्यकता है कि हम मूर्ति की पूजा करें ? दूसरी बात यह है कि मूर्ति में परमात्मा होने पर भी ईश्वर का साक्षात्कार करने वाला हमारा आत्मा उसमें नहीं है; इस लिये मूर्तिपूजा ठीक नहीं।

करैन्सी नोट और मूर्तिपूजा

प्रश्न—जैसे एक कागज़ के टुकड़े पर किसी राजा महाराजा की

मुहर यानि उसकी तस्वीर आदि देने से वह कीमती नोट हो जाता है, इसी प्रकार मूर्ति पर परमात्मा की मुहर होने से वह पूजनीय हो जाता है।

उत्तर-(१) जितने कागज़ के नोट निकाले जाते हैं उतना ही सोना चांदी सरकार को जमा करना पड़ता है जब कोई चाहे उन कागज़ों का सोना चांदी ले सकता है। इसलिये वह कागज़ों की कीमत नहीं किन्तु सोने चांदी की है। इतने पर भी लोग इनका विरोध करते हैं।

(२) आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि मन्दिरों में रक्खी हुई मूर्तियों पर परमात्मा की मुहर लगी हुई है? जब तक आप यह सिद्ध नहीं करते कि परमात्मा ने इन मूर्तियों पर मुहर लगाई है तब तक आपकी बात मानने के योग्य नहीं।

(३) जाली नोट बनाने वाला जेलखाने में डाल दिया जाता है। पौराणिक लोगों ने भी देवी भागवत के कथनानुसार ये सब जाली नोट मूर्तियें अपने पेट भरने के लिये बनाई हैं इसलिये अवश्य जेलखाने में डाले जावेंगे।

—(देखो पृष्ठ, पुराणप्रकरण)

बादशाही के बदलने से उनके कागज़ के नोट नहीं चलते जैसे टांगानिका से जर्मन का राज्य जाने पर दत्थे के दत्थे कागज़ों के नोट निकम्मे हो गए।

परमात्मा के शरीर की पूजा

प्रश्न—मूर्ति परमात्मा का शरीर है देह की पूजा से देही प्रसन्न होता है इसलिये मूर्ति पूजा ठीक है।

उत्तर-न्याय दर्शन में लिखा है—**चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्** । जिसमें चेष्टा करना, न करना, उलटा करने की हरकत, इन्द्रिय वा विषयों के ग्रहण करने की शक्ति का जो अधिष्ठान हो उस को शरीर कहते हैं। मूर्तियों में कोई भी शरीर का लक्षण नहीं पाया जाता इसलिये वह शरीर नहीं। और मूर्ति परमात्मा का शरीर है इसके लिए तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ? कई कह दिया करते हैं **पृथिवी यस्य शरीरं** पृथिवी परमात्मा का शरीर है। हम सिद्ध कर आये हैं कि जहां पृथिवी आदि परमात्मा का शरीर बतलाया है वहां रूपकालंकार है। दूसरी बात यह है कि यहां पृथिवी को शरीर कहा है न कि मूर्ति को। यदि कहो मूर्ति भी तो पृथिवी है तो इसमें सर्व पूजा का प्रसंग आयगा। जितने संसार में पार्थिव पदार्थ भले बुरे हैं उन सब की पूजा क्यों नहीं करते ? इस लिये यह निरा ढकोसला है।

सर्वव्यापक परमात्मा और चूहे

प्रश्न—आर्य समाजी जो यह कहते हैं कि अगर मूर्ति परमात्मा

का शरीर है तो उस पर चूहे आदि जब चढ़ते हैं तो उनको मारती क्यों नहीं ? जब आर्य समाजियों के सर्वव्यापक परमात्मा में सब कुछ होता है और वह किसी को कुछ नहीं कहता तो मूर्तियों के विषय में यह शंका क्यों ?

उत्तर—आर्यसमाजियों का परमात्मा पौराणिक शिव की तरह कहीं किसी राक्षस को वर दान देना, वही राक्षस पार्वती के लेने का आग्रह करता है तो उस से लड़ाई करना, डरके मारे भाग कर नैपाल में छिपना, जब स्वयं उसको न मार सके तो विष्णु की सहायता लेना, कभी प्रसन्न होकर वर देना, कभी बैल पर चढ़कर हाथ में त्रिशूल लेकर लड़ना आदि कार्य नहीं करता; इस लिये आर्यों की यह शंका ठीक है कि जब वह अपने शत्रुओं को मारता है तो उन चोरों को जो मूर्तियों वा मूर्तियों के ज़ेवरों को चुराते हैं क्यों नहीं मारता ? चूहे कौन से योगीराज हैं जो उन को कुछ नहीं कहता ?

निराकार का ध्यान

प्रश्न—जब परमात्मा निराकार है उस की कोई मूर्ति नहीं तो ध्यान कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर—ध्यान नाम है चिन्तन का। चिन्तन निराकार चीज़ों का भी होता है। शब्द निराकार है किन्तु उसको सुनकर सब मनुष्य चिन्तन करते हैं; जितने भी सांसारिक पदार्थ हैं उनके

द्वारा जो आनन्द, सुख वा दुःख मिलता है वह निराकार होता है किन्तु सम्पूर्ण संसार उसका चिन्तन करता है। परमात्मा आनन्द स्वरूप है तो वह भी निराकार ही होगा और उसका चिन्तन भी हो सकेगा।

स्वामी जी का फ़ोटो

प्रश्न—यदि आर्यसमाजी मूर्ति पूजा नहीं मानते तो दयानन्द जी की मूर्तियें क्यों समाज मन्दिरों में लगाते हैं, क्या यह मूर्ति पूजा नहीं ?

उत्तर —आर्य समाज जड़ मूर्ति पूजा का विरोधी है न कि चित्र-कला वा मूर्ति निर्माणविद्या का। कहीं आर्यसमाज की पुस्तकों में यह नहीं लिखा कि स्वामी दयानन्द आदि महा-पुरुषों की मूर्तियों पर धूप दीपादि चढ़ाने से मुक्ति हो जाती है।

प्रश्न—यदि स्वामीजी की मूर्ति नहीं पूजते तो उसकी बेइज्जती करने से क्यों घबराते हैं ?

उत्तर—जो महापुरुषों की मूर्तियें होती हैं वह हमारी सम्पत्ति हैं, अगर कोई मनुष्य हमारी किसी चीज़ को बिगाड़ता है तो स्वाभाविक ही है, हम उस पर क्रोधित होते हैं। यदि कहें कि यदि कोई दूसरा आदमी करे तो उसकी भी मूर्खता है।

जो अपनी सम्पत्ति को व्यर्थ नष्ट करता है ऐसे मूर्ख को शिक्षा देना भी हमारा काम है। दूसरी बात यह है कि जब घर में रक्खी किसी महापुरुष की मूर्ति वा चित्र को बालक देखेंगे तो उसके जीवन चरित्र पढ़ने वा उसकी बनाई पुस्तकों को देखने से उन को लाभ होगा।

नकशा और मूर्तिपूजा

प्रश्न—जैसे नकशे को देखकर असली पहाड़ वा नदी आदि का ज्ञान बालकों को हो जाता है इसी प्रकार मूर्ति को देख कर परमात्मा का ज्ञान होता है।

उत्तर—पहाड़ नदी जंगल आदि सब चीज़ें साकार हैं इसलिये उनका चित्र, नकशा बन सकता है किन्तु परमात्मा के निराकार होने से उस का चित्र नहीं बना सकते।

काल और मूर्तिपूजा

प्रश्न—जैसे काल के निराकार होने पर भी साकार घड़ी से निराकार काल का ज्ञान होता है इसी प्रकार मूर्ति से परमात्मा का ज्ञान होता है।

उत्तर—सम्पूर्ण संसार की विचित्र रचना को देखकर यह ज्ञान होता है कि इस संसार के बनाने वाला सर्वज्ञ परमात्मा है।

इससे मूर्ति पूजा वा परमात्मा की मूर्ति सिद्ध नहीं होती। ईश्वर की कृति को देख कर परमात्मा का ज्ञान होता है, मूर्ति को देखकर जिस साकार ब्रह्मा आदि मनुष्य की मूर्ति है उसका वा कारीगर का ज्ञान होता है परमात्मा का नहीं। दूसरी बात यह है कि जैसे टकटक करके घड़ी काल का ज्ञान कराती है वैसे मूर्ति नहीं। बन्द घड़ी से काल का ज्ञान नहीं होता।

साकार की मूर्ति

प्रश्न--हम साकार परमात्मा की मूर्ति बनाते हैं निराकार की नहीं।

उत्तर—मूर्ति दो ही अवस्थाओं में हो सकती है।

(१) किसी चीज़ के अणु (ज़र्रे) पहले अलग २ हों, फिर उनको इकट्ठा कर दिया जावे तो उसकी स्थूल शकल बन जाती है।

(२) जीव की तरह अगर परमात्मा शरीर धारण करे तो उसकी मूर्ति बन सकती है। अगर परमात्मा के अणु माने जावें जब वह अणु मिल कर साकार परमात्मा बना, तब उन ज़र्रों को किसने मिलाया? ज़र्रे मिलकर साकार परमात्मा बनने से पहले परमात्मा नहीं था। बनी हुई चीज़ बिगड़ती है, जब अणु अलग २ हो जावेंगे तब भी परमात्मा नहीं रहेगा। इत्यादि युक्तियों से अणुओं से परमात्मा का बनना सिद्ध नहीं होता। शरीर धारण वही करता है जिसके शुभ अशुभ

कर्म हों, तब फल भोगने के लिये शरीर मिलता है परमात्मा के ऐसे कर्म नहीं होते जिनके लिये उसको शरीर धारण करके उसका फल भोगना पड़े और उसको फल कौन भुगतावेगा ? वेद में स्पष्ट लिखा है कि वह कर्मों के फल को नहीं भोगता। जो शरीर धारी होगा वह हमारी तरह सुख दुःख भोगने वाला होने से परमात्मा नहीं हो सकता इस बात को अधिक विस्तार से अवतार मीमांसा पुस्तक में लिखूंगा। प्रायः यही युक्तियें पौराणिक पेश किया करते हैं जिनका उत्तर मैंने दे दिया है।

चौथा अध्याय

वेद और मूर्तिपूजा

परमात्मा के नाम

शास्त्रार्थों में पौराणिक पण्डित कह दिया करते हैं कि आर्य-समाजियों को पुराण के प्रमाण न देकर वेद के प्रमाण मूर्तिपूजा के खण्डन करने के लिये देने चाहियें इसलिये मैं इस प्रकरण में वेद के प्रमाण देकर यह सिद्ध करूंगा कि वेद में कहीं भी जड़ मूर्तिपूजा के प्रमाण नहीं मिलते इसके विरुद्ध अर्थात् मूर्तिपूजा खण्डन के बहुत प्रमाण नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥य०अ०३२मं०१॥

अर्थ—वही ब्रह्म ज्ञानस्वरूप होने से अग्नि, प्रलयकाल में सबका ग्रहण करने वाला होने से आदित्य, अनन्तबल वा सबका धारण करने वाला होने से वायु, आनन्द स्वरूप होने से चन्द्रमा, शुद्ध होने से शुक्र, सब से बड़ा होने से ब्रह्म, सर्वव्यापक होने से आपः, सब प्रजाओं का स्वामी होने से प्रजापति है। अग्नि आदि नाम मुख्यतया परमात्मा के हैं तथा गौणतया आग आदि जड़ पदार्थों के हैं क्योंकि जैसा प्रकाशादि परमात्मा कर सकता है वैसा भौतिक अग्नि आदि का नहीं। इसी बात को ऋग्वेद में स्पष्ट किया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
ऋ० १ । १४६ ॥

अर्थ—एक होने पर भी विद्वान् लोग इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, दिव्य आदि अनेक नामों से परमात्मा को पुकारते हैं। इसलिये इस मन्त्र में भौतिक अग्नि आदि को परमात्मा नहीं बतलाया किन्तु अग्नि आदि ईश्वर के नाम हैं। वेदान्त दर्शन के प्रथम अध्याय में इस बात को भली प्रकार से सिद्ध किया है कि आकाशादि परमात्मा के नाम हैं। कुछ

उदाहरण नीचे देता हूं--

"आकाशस्तल्लिंगात्"—जिन श्रुतियों में यह लिखा है कि आकाश से सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति हुई है वही आनन्दमय है, वहां आकाश का अर्थ जड़ आकाश नहीं किन्तु परमात्मा है। क्योंकि यह लक्षण ईश्वर में ही घट सकता है। **"अत एव च प्राणः"** वे० अ० १ पा० १ जहां प्राण को सृष्टिकर्ता कहा हो वहां उसका अर्थ जड़ प्राण नहीं किन्तु परमात्मा है। इसी प्रकार इस प्रकरण में सिद्ध किया है कि जहां २ अग्नि वायु आदि को सृष्टि का कर्ता, हर्ता, आनन्दमय आदि बतलाया है वहां २ इन नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है अग्नि आदि जड़ पदार्थों का नहीं। इसलिये पौराणिक लोगों का यह कथन ठीक नहीं कि इस मन्त्र में भौतिक अग्नि आदि परमात्मा के साकार रूप का वर्णन किया है।

परमात्मा का स्वरूप

अब यह प्रश्न होता है कि अग्नि आदि नाम वाले परमात्मा का स्वरूप क्या है ? अतः दूसरे मन्त्र में कहा है—

उस को पकड़ा नहीं जासकता—

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न मध्ये परिजग्रभत् ॥ य०३२।२ ॥

अर्थ—प्रकाशमान परमात्मा से कालावयव प्रकट होते हैं, ऊपर नीचे वा बीच में कोई भी उसको पकड़ नहीं सकता। अब प्रश्न पैदा होता है कि उसको ऊपर नीचे बीच में से क्यों नहीं पकड़ सकते? इस बात का उत्तर तीसरे मन्त्र में दिया है—

उस की मूर्ति नहीं है।

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषः॥ य० ३२।३॥

अर्थ—जिस परमात्मा का नाम सबसे बड़ा वा यश स्वरूप है उसकी कोई प्रतिमा मूर्ति शकल वा तोलने का साधन नहीं है। इस बात को सिद्ध करने के लिये इसी मन्त्र में य० अ० २५। १०—१३ वा य० अ० १२। १०२ तथा य० अ० ८ मं० ३६। ३७ के प्रमाण प्रतीक रूप में दिये हैं जिनका पूर्ण मन्त्र देकर नीचे व्याख्या की जाती है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
य० २५। १०॥

अर्थ—जो सम्पूर्ण कार्य जगत् के उत्पन्न होने से प्रथम एक ही संसार का पति विद्यमान था, जिसमें सूर्य विद्युत् आदि सम्पूर्ण पदार्थ मौजूद हैं जो पृथिवी वा द्युलोक को धारण

करता है, उस भगवान की हम भक्ति करें।

यजुर्वेद के तीसरे मन्त्र में इस मन्त्र का प्रतीकरूप से प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि परमात्मा की मूर्ति नहीं होती। यदि परमात्मा मी मूर्ति होती तो उसको स्थूल, साकार, तथा भार वाली होने से किसी न किसी आधार की अवश्य आवश्यकता होगी। वह द्युलोक वा पृथिवी लोक को धारण नहीं कर सकती किन्तु जितनी मूर्तियें मन्दिरों में रखी हैं वे सब पृथिवी के अश्रित हैं। इस मन्त्र में परमात्मा को पृथिवी आदि लोकों के धारण करने वाला बतलाया है। मूर्ति किसी समय में उत्पन्न होती है, उत्पन्न होने से प्रथम नहीं होती, इस मन्त्र में परमात्मा को सब भौतिक पदार्थों से प्रथम विद्यमान बतलाया है इससे सिद्ध है कि परमात्मा मूर्ति नहीं।

तीसरी बात इस मन्त्र में यह कही है कि सूर्यादि पदार्थ परमात्मा के अन्दर हैं। १३ लाख हमारी पृथिवी जैसे गोले बनें तब एक सूर्य बनता है। ऐसे अनन्त सूर्य जिस परमात्मा में विद्यमान् हैं उसकी मूर्ति नहीं हो सकती।

मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ य० १२। १०२॥

अर्थ—जिसने द्युलोक वा पृथिवी लोक को उत्पन्न किया है, जिसके नियम अटल हैं जो चन्द्रादि लोकों को उत्पन्न करके उनमें व्याप्त हो रहा है उस भगवान् की हम भक्ति करें वह हमें अपने से पृथक् न करे।

इस मन्त्र में यह बताया है कि परमात्मा सब लोक लोकान्तरों में व्यापक है। उसी ने सब लोक उत्पन्न किये हैं। मूर्ति वा मूर्तिमान् सम्पूर्ण लोकों में व्यापक नहीं हो सकता, इसलिये परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं।

यस्मान्न जातः परोऽन्योऽस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्-
त्रीणिज्योतींषि सचते स षोडशी ॥य० ८।३६॥

अर्थ—जो किसी कारण से उत्पन्न नहीं हुआ अथवा जिससे उत्तम कोई वस्तु नहीं है, जो सम्पूर्ण लोकों में व्यापक है, जो सम्पूर्ण संसार को अनेक प्रकार के पदार्थ दान देता है, इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, लोक, नाम ये १६ कलायें उसी परमात्मा में विद्यमान हैं।

इस मन्त्र में यह बतलाया है कि वह परमेश्वर पैदा नहीं हुआ, उससे उत्तम और उत्कृष्ट कोई नहीं है।

जितनी मूर्तियें मन्दिरों में रक्खी हैं, उनसे उत्तम रूप, रंग वस्त्र, आभूषण, लम्बाई, चौड़ाई आदि बातों में अनेक मूर्तियें मिल सकती हैं। और ये सब पैदा हुई हैं, इसलिये परमात्मा की कोई मूर्ति, आकार, शकल नहीं है।

यदि कोई प्रश्न करे कि जब परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है तो उसका ध्यान वा चिन्तन कैसे हो सकता है? इस बात का उत्तर इसी मन्त्र में दिया है। **'यस्य नाम महद्यशः'** जिसका नाम-स्मरण, आज्ञा पालन ही महायश है। योग में लिखा है **"तज्जपस्तदर्थ भावनम्"** परमात्मा के ओ३म् नाम का जप अर्थात् उसके अर्थ की भावना करनी चाहिये। मन्त्र ने स्पष्ट कर दिया है कि उसका चिन्तन नाम स्मरण है न कि मूर्तिपूजा।

प्रतिमा का अर्थ

प्रश्न—इस मन्त्र में प्रतिमा का अर्थ उपमान या मान, सदृश है। परमात्मा के बराबर संसार में कोई नहीं। इसलिये आर्य-समाजियों का इस मन्त्र में मूर्तिपूजा का निषेध बतलाना ठीक नहीं।

उत्तर—प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति होता है इस बात को पौराणिक मानते हैं **'दैवतप्रतिमा हसन्ति'** इस प्रमाण में सब पौराणिकों ने प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति किया है तो आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है, कि प्रतिमा का अर्थ

मूर्ति न किया जावे यदि आप कहें कि महीधर आदि ने इस का ऐसा अर्थ नहीं किया। महीधर आदि का भाष्य हमारे लिये प्रमाण नहीं। दूसरी बात यह है कि अगर आपके करने के मुताबिक प्रतिमा का अर्थ उपमान, सदृश लिया जावे तो भी परमात्मा की मूर्ति सिद्ध नहीं होती। जितनी आपने मन्दिरों में मूर्तियें रक्खी हैं उनके सदृश वा उनसे अच्छी अनेक मूर्तियें मिल सकती हैं। उनके लिये सैंकड़ों उपमायें दे सकते हैं। आपके शरीरधारी अवतारों के लिये घनश्याम यानि बादल की तरह काला आदि अनेक उपमाऐं पुराणों में मौजूद हैं। जो देहधारी वा मूर्तिमान् हो उसके तुल्य कोई नहीं होता, यह बात गलत है, यह बात केवल निराकार परमेश्वर में ही घट सकती है।

क्या परमात्मा गर्भ में आता है ?

प्रश्न—य० वेद के ३२ अ० के चौथे मन्त्र में स्पष्ट ही लिखा है—कि परमात्मा गर्भ में आता है वा ज़ाहिर होता है।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर हम विस्तारपूर्वक अवतार मीमांसा पुस्तक में देंगे यहां इतना ही लिखना काफी है कि 'जातः' का अर्थ पैदा होना नहीं है, किन्तु परमात्मा संसार को बना कर उसके द्वारा मनुष्यों के हृदय में प्रकट होता है यानि उसका ज्ञान होना है।

अयं होता प्रथमं पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आनिषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः ॥

ऋ० ६ । ९ ॥ ४ ॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण संसार को दान देने वाला है प्रथम इसी अमृत, नाशरहित ज्योति को देखो । दूसरा जीवात्मा है जिसके होने से शरीर बढ़ता है। इस मन्त्र में यह स्पष्ट कहा है कि जीव के शरीर होता है परमात्मा के जब शरीर ही नहीं तो उसकी मूर्ति नहीं बन सकती ।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशयेकं मनोजविष्ठं पतयत्स्वंतः ।
विश्वे देवा समनसः सकेता एकं क्रतुमभिवियन्ति साधु ॥

ऋ० ६ । ९ । ५ ॥

अर्थ—परमेश्वर ध्रुव सत्य ज्योति चित् 'कं' सुख स्वरूप अर्थात् सच्चिदानन्द है । सम्पूर्ण विद्वान उस एक ही की उपासना करते हैं । इस मंत्र में परमात्मा को सच्चिदानन्द बतलाया है मूर्ति वा मूर्तिमान् कभी सच्चिदानन्द नहीं होता ।

अन्य की उपासना न करो

माचिदन्यद्विशंसत सखायो मारिषण्यत। इन्द्रमित
स्तोता वृषणं मुरुक्था च शंसत ।

अर्थ—अयि मित्रो! इन्द्र परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे की स्तुति मत करो। दूसरे की स्तुति करके मत मरो उसी भगवान् की बारंबार स्तुति करो।

इस मन्त्र में स्पष्ट इस बात का वर्णन है कि परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे की स्तुति मत करो, किन्तु पौराणिक जिन अनेक देवी देवताओं की पूजा करते हैं वे परमात्मा नहीं इसलिये मूर्ति पूजा अनुचित है।

ईश्वर निराकार

इन्द्र किम श्रुत्वा अस्य वेद
स हि जिष्णु पथिकृत् सूर्याय।
आन्मेनां कृण्वन् अच्युतो भुवद्
गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीत।ऋ० १०।११।३॥

अर्थ—वही परमात्मा भक्त की स्तुति को सुनता है, जयशील है, विद्वान् के लिये रास्ता दिखलाने वाला, वही वेदवाणी का देने वाला, निर्विकार इन्द्रियागोचर अर्थात् इन्द्रियों से नहीं दीखता। मूर्ति विकारी वा इन्द्रियों से दीखती है इसलिये वह परमात्मा नहीं। उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होगया है कि वेदों में मूर्तिपूजा विधायक मंत्र नहीं हैं किन्तु मूर्तिपूजा के खण्डन के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

॥ इतिशम् ॥

॥ ओ३म ॥

मूर्तिपूजा परिशिष्ट

मूर्तिपूजा और स्वामी शंकर

स्वामी शंकराचार्य पौराणिकों में अवतार माने जाते हैं। उपनिषदों तथा शारीरिक सूत्रों पर उन्होंने भाष्य भी किया है। वे भी मूर्तिपूजा के समर्थक नहीं थे। उन्होंने परापूजा या आत्म-पूजा में लिखा है —

आनंदे सच्चिदानंदे निर्विकल्पैक रूपिणि ।
स्थितेऽद्वितीये भावे वै कथं पूजा विधीयते ॥१॥

जब वह परमात्मा सच्चिदानंद है उसकी कोई भी मूर्ति नहीं बन सकती। कारण यह है कि परमात्मा सत्, चित् तथा आनंदस्वरूप है और मूर्ति नाश होने वाली, जड़ और आनन्द

रहित है। जब मूर्ति नहीं बनती पुनः उस की पूजा कैसे हो सकती है।

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥२॥

भगवान् सर्वत्र परिपूर्ण हैं पुनः उन का आह्वान क्यों करते हो? जब कि वह सब का आधार है उसको आसन पर कैसे बैठा सकते हैं? मलरहित के पांव कैसे धो सकते हो? शुद्ध का आचमन कराना कैसे संगत हो सकता है?

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
निरालंबस्योपवीतं रम्यस्याभरणं कुतः ॥३॥

परमात्मा सर्वथा निर्मल है फिर उस को स्नान आदि क्यों कराते हो, सारा संसार उस के मध्य में है उसे वस्त्र कैसे पहिना सकते हैं, परमात्मा स्वयं रमणीय है पुनः उसके आभूषण कैसे?

निर्लेपस्य कुतो गन्धं पुष्पं निर्वासनस्य च।
निर्गंधस्य कुतो धूपं स्वप्रकाशस्य दीपकम् ॥४॥

निर्लेप भगवान को चन्दन का लेप क्यों लगाते हो, जब वह सुगन्ध की इच्छा से रहित है पुनः उस को पुष्प क्यों चढ़ाते हो, निर्गंध को धूप क्यों जलाते हो तथा स्वयं प्रकाशमान के आगे दीपक क्यों जलाते हो?

नित्यतृप्तस्य नैवेद्यं निष्कामस्य फलं कुतः ।
ताम्बूलं च विभो कुत्र नित्यानंदस्य दक्षिणा ॥५॥
प्रदक्षिणाह्यनंतस्य चाद्वितीयस्य नो नतिः ॥६॥

नित्यतृप्त को भोग क्यों लगाते हो, निष्काम को फल कैसे, विभु को ताम्बूल क्यों, जब कि परमात्मा अनंत है पुनः उसकी प्रदक्षिणा कैसे करते हो ?

उपर्युक्त श्लोकों में स्वामी शंकराचार्य जी ने कैसी प्रबल युक्तियों से मूर्तिपूजा का खंडन किया है। सर्वत्र परिपूर्ण, पूर्ण-काम, फल इच्छा रहित, परमात्मा को भोग लगाना, स्नान कराना, कपड़े पहनाना, दीपक दिखलाना आदि अत्यंत असंगत तथा बुद्धि रहित कार्य है।

शिवगीता

वेदैरशेषैरहमेव वेद्यो वेदांत कृद्वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्मदेहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥
अ० ६।५५॥

सम्पूर्ण वेद परमात्मा का गान करते हैं वेदों का उपदेश परमात्मा ही ने किया है उस परमात्मा में देह के कारणभूत पाप तथा पुण्य भी नहीं हैं तथा उस का नाश भी नहीं होता। उस का जन्म नहीं होता देह इन्द्रिय बुद्धि आदि का सम्बन्ध भी उससे नहीं।

इस श्लोक में यह सिद्ध किया है कि जिस परमात्मा ने वेदों का उपदेश किया है तथा जिसका वर्णन चारों वेदों में किया है वह परमात्मा जन्म मरण के बन्धन से रहित है तथा उसका शरीर आदि भी नहीं है जब वह शरीर से रहित है फिर उस की मूर्ति कैसे बन सकती है।

अज्ञानमूढा मुनयोवदंति पूजोपचारादि बलिक्रियाभिः।
तोषं गिरीशे भजतीति मिथ्या कुतस्त्वमूर्तस्य तु भोग लिप्सा ॥ ३१ ॥

अज्ञानी तथा मूढ़ यह कहते हैं कि धूप दीपादि द्वारा पूजा करने से परमात्मा प्रसन्न हो जाते हैं यह सब मिथ्या प्रलाप है जब परमात्मा की शरीराभाव से मूर्ति नहीं है,

फिर उस को भोग की इच्छा कैसे हो सकती है ?

किंचिद्दलं वा चुलुकोदकं वा यस्त्वंमहेश प्रतिगृह्यदत्से।
त्रैलोक्यलक्ष्मी मपियज्जनेभ्यः सर्वत्वविद्याकृतमेवमन्ये ।३२।

जो परमात्मा सम्पूर्ण संसार का ऐश्वर्य हमको प्रदान करता है पुनः उस परमेश्वर को एक चुल्लू पानी चढ़ाना या उसे पत्ते चढ़ाना क्या अज्ञान नहीं है। शिव गीताकार कहते हैं ये सब अविद्या की बातें हैं।

उत्तर गीता का प्रमाण

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान् पाषाण मृण्मयान्।
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मज्ञान परायणाः ॥६॥

सब तीर्थ पानी में परिपूर्ण हैं सिवाय जल के वहां मुक्ति देने वाली कोई भी बात नहीं है । तथा जितने भी पौराणिक लोगों ने देवता मंदिरों में स्थापन किये हुए हैं वे सब पत्थर वा मिट्टी वा धातुओं के बने हुए हैं ।

जो परमात्मा की पूजा करने वाले योगीजन हैं । वे कभी भी इन पाषाणों की पूजा नहीं करते ।

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतं ।
प्रतिमा स्वल्प बुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥ अ० ३।७॥

अग्नि होत्र करना द्विजमात्र का धर्म है तथा मुनियों का कर्तव्य है कि वे हृदय में परमात्मा का स्मरण करें । अल्प बुद्धि लोक मूर्ति पूजा करते हैं । जो बुद्धिमान् हैं वे तो परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हुए वे कभी पाषाण पूजा को नहीं करते ।

इन प्रमाणों द्वारा उत्तरगीता में कैसा साफ मूर्ति पूजा का खंडन किया है । जैसे शिवगीता तथा उत्तर गीता में पाषाण आदि की मूर्तियों का खंडन किया है वैसे अन्य गीताओं में भी मूर्तिपूजा का खंडन आता है विस्तार भय से नहीं लिखते ।

त्र्यम्बक पूजा

शंका

यजुर्वेद में परमात्मा को त्र्यम्बक तीन नेत्रों वाला बतलाया है वह शिवजी हैं इसलिये उनकी मूर्ति बना करके पूजा करनी चाहिये।

समाधान

तिस्रो देव्यो यदा चैनं भजंते परमेश्वरम् ।
द्यौरापः पृथिवी चैव त्र्यम्बकस्तु ततः स्मृतः ।

महा० द्रोण० अ० २०३ । १२८ ॥

अर्थ—द्यौलोक पृथिवीलोक तथा जलीय लोक ये तीनों शक्तियें परमात्मा के अधीन हैं। अतः इन तीनों शक्तियों का अधि-

पति होने से परमात्मा को त्र्यम्बक कहते हैं। यह महाभारत का प्रमाण पौराणिक लोगों के तीन नेत्र वाले अर्थ पर वज्रपात है इस प्रमाण में कितनाम्‍ पष्ट बतलाया गया है कि द्यौलोक अर्थात् प्रकाशमय लोक आदि की तीन शक्तियों का स्वामी होने से ईश्वर को त्र्यम्बक कहते हैं न कि तीन नेत्रों वाला होने से।

शंका

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि।

इस अथर्व वेद के मंत्र में परमात्मा को पत्थर बतलाया है। इस प्रमाण से मूर्ति पूजा सिद्ध है।

समाधान

धन्य हो महाराज वेद का प्रमाण देकर नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव चेतन परमात्मा को जड़ तथा चेतना रहित पाषाण बना दिया। इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है जो आप करते हैं किन्तु इसका सत्यार्थ कौशिक सूत्र में किया है जो नीचे लिखा जाता है।

दर्भाणामुपादाय ऋषीणां प्रस्तरोसीति
दक्षिणतो ब्रह्मा।
सम निदधाति। अ० १। १८॥

अर्थ—इस मंत्र को पढ़ कर कुशा का बना हुवा ब्रह्मा के लिये वेदी के दक्षिण भाग में आसन स्थापित करता है।

इस कौशिक सूत्र के प्रमाण से यह सिद्ध है कि प्रस्तर का अर्थ यहां पाषाण नहीं है किन्तु आसन है और वह आसन यज्ञ के सर्व प्रधान ऋत्विज ब्रह्मा के लिये स्थापित किया जाता है।

शंका

एहि अश्मानमातिष्ठ अश्माभवतु ते तनुः।
कृण्वंतु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्।
अ० २। १३। ४॥

हे परमात्मन आप चलें इस पाषाण की मूर्ति में प्रवेश करें यह आपका शरीर है। इत्यादि।

इस अथर्व वेद के मन्त्र में परमात्मा का आवाहन करना लिखा है तथा यह भी लिखा है कि पाषाण उसका शरीर है। इस प्रमाण से स्पष्ट ही मूर्ति पूजा सिद्ध है॥

समाधान

आपका किया हुआ अर्थ सर्वथा अशुद्ध है इसके लिये सायण भाष्य को ध्यान से अवलोकन कीजिये।

सायण भाष्य

हे माणवक एहि आगच्छ अश्मानं
आतिष्ठ दक्षिण पादेन आक्रम

ते तव तनुः अश्मा भवतु अश्मवत्
रोगादि विनिर्मुक्तं दृढं भवतु
विश्वे देवाः ते तव शत संवत्सर-
परिमितं आयुः कुर्वन्तु ॥

यज्ञोपवीत संस्कार के समय आचार्य ब्रह्मचारी से कहता है कि हे ब्रह्मचारिन् आओ तथा इस पत्थर पर दायां पांव रक्खो और इस पाषाण की तरह अपनी देह को दृढ़ तथा बलशाली बनाओ और विद्वानों के कथन के अनुकूल अपने आचरण को बनाओ जिससे तुम्हारी सौ वर्ष की दीर्घ आयु हो जावे।

कितना स्पष्ट वेद मन्त्र का अर्थ है यहां पर मूर्तिपूजा की गंध भी नहीं है। इस मन्त्र में पत्थर की पूजा नहीं लिखी, किन्तु इस पर पांव रखना लिखा है। क्या पौराणिक पांव रखकर मूर्तिपूजा करते हैं। मुझको यह बात देखकर आश्चर्य होता है कि ये मूर्ति पूजक अपने आचार्यों के भाष्यों को भी ध्यान से नहीं पढ़ते। अन्यथा ऐसी शंका करने का अवकाश ही नहीं है।

शङ्का

बृहदारण्यक उपनिषद् में परमात्मा के दो रूप मूर्ति तथा अमूर्त लिखे हैं, पुनः आर्यसमाजी ईश्वर के मूर्त रूप की पूजा करने से क्यों इनकार करते हैं ?

समाधान

स्वामी शङ्कराचार्य जी इस उपनिषद् वचन का भाष्य करते हुए लिखते हैं—

पंच भूतानां सत्यानां कार्य कारणात्मकानां
स्वरूपावधारणार्थमिदं ब्राह्मणमारभ्यते।
मूर्तं मूर्छितावयवमितरेतरानु प्रविष्टावयवं धन संहत
मित्यर्थः पृथिव्यादि भूतत्रयं मरणधर्मा।
वायुश्चांतरिक्षं परिशेषात् भूतद्वयं अमूर्तम्॥शां० भा०

जो कार्य कारण स्वरूप पांच अग्नि आदि भूत हैं उनके स्वरूप का निश्चय करने के लिये उपनिषद्कार इस ब्राह्मण को आरम्भ करते हैं।

अग्नि, पृथिवी तथा जल ये तीन भूत मूर्छित अवयव होने से मूर्त कहलाते हैं, तथा वायु तथा अन्तरिक्ष से दोनों भूत अमूर्त हैं। यहां श्री स्वामी शङ्कराचार्य जी ने ईश्वर के दो रूप मूर्त तथा अमूर्त नहीं बतलाये, किन्तु पांच भूतों के बतलाये हैं।

इसलिए इस प्रमाण से भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती।

शंका

यदि आर्य समाजी मूर्तिपूजा नहीं मानते तब स्वामी दयानन्द जी की मूर्तियें अपने घरों में आर्यसमाजी क्यों रखते हैं?

समाधान

उपर्युक्त शंका के निम्नलिखित समाधान हैं।

(१) आर्यसमाजी मूर्तिकला के विरोधी नहीं, किन्तु जड़-मूर्ति को परमात्मा मान कर उसको धूपदीपादि चढ़ाने इस बात के विरोधी हैं। घर में मूर्ति के रखने से उसकी पूजा नहीं होजाती।

(२) यह युक्ति सर्वथा मूर्खतापूर्ण है कि यदि तुम अमुक वस्तु जो तुम्हारे घर में है, यदि उसकी पूजा नहीं करते, तब उसको तोड़ते फोड़ते क्यों नहीं ? हमारे समाज मन्दिर में बीसियों प्रकार की वस्तुएं रखी हैं, क्या हम उनको परमात्मा मानकर उनकी पूजा करते हैं। यदि कोई पौराणिक कहे कि अमुक आर्यस[illegible] के जो मकान है, वह उसकी पूजा करता है अन्यथा उसको फोड़ कर दिखलावे, तब क्या कोई बुद्धिमान उसकी बात को मानने के लिये तैयार होगा। किसी पदार्थ को रखना उसकी पूजा का चिन्ह नहीं है अथवा उसको बिगाड़ फैंकने से उसकी अपूजा का चिन्ह नहीं है।

(३) जब कोई पौराणिक यह युक्ति उपस्थित करे कि यदि तुम स्वामी दयानन्द की मूर्ति नहीं मानते तब उसका निरादर क्यों नहीं करते। उनको उत्तर देना चाहिये कि यदि तुम यह पूजा वा अपूजा की कसौटी मानते हो

तब हम समाजी जो तुम्हारी किसी भी मूर्ति की पूजा नहीं मानते तथा पूजा न करने की कसौटी निरादर करना, अब तुम अपनी सम्पूर्ण मूर्तियों का ढेर लगावो हम उन सबका तुमको अनादर करके दिखलाते हैं, तब स्वयं प्रतिपक्षी मौन साध लेगा।

ऊपर मैंने कतिपय आवश्यक प्रमाण पाठकों के लाभ के लिये लिख दिये हैं।

तथा कुछ युक्तियों का समाधान भी कर दिया है। यद्यपि मेरे पास अन्य प्रमाण संग्रह भी हैं, किन्तु विस्तारभय से सम्पूर्ण नहीं लिखा।
